गोदना चित्र-शैली

(भाग-पाँच)

कृष्ण कुमार कश्यप

गोदना चित्र–शैली

(भाग – पाँच)

कृष्ण कुमार कश्यप

कला संजिवनी

बरहेता, लहेरिया सराय, दरभंगा।

कॉपी राइट : गोपाल जी

संस्करण : जून, 2018
द्वितीय संस्करण नवम्बर, 2021

लेखकीय संपर्क : (मोबाइल) 99 31 66 59 39
e-mail : kashyapkk15@gmail.com

मूल्य : सात सौ रुपये मात्र

प्राप्ति-स्थान :
(1) कला संजिवनी, बरहेता, लहेरियासराय, दरभंगा
मो 9931665939
(2) भारती विकास मंच, बरहेता

फोटो – के के कश्यप

गोदना चित्र–शैली

भूमिका

किसी पुस्तक की भूमिका से तात्पर्य उस पुस्तक से सम्बंधित उन सूचनाओं को रखना है, जिनका सम्बंध पुस्तक के निर्माण से होता है। खास कर, किसी लोक कला–विषय पर पहली बार अकादमिक के साथ ही व्यावसायिक पुस्तक लिखना अपने आप में एक जटिल कार्य होता है,उसमें भी, पुस्तक लिखने का उद्देश्य यदि जन साधारण को आजीविका उपलब्ध कराना हो, तब तो यह और भी जटिल हो जाता है। ऐसी पुस्तकों के प्रणयन की प्रक्रिया कमोबेश किसी जीवन–रक्षक औषधि के निर्माण जैसी ही होती है; परिकल्पना करना, उसे क्रमबद्ध करना, लोक–ज्ञाता के पैमाने पर उसका परीक्षण करना, उत्पादन के लिए डिजाइन की परिकल्पना करना, बाजार का निर्माण करना, व्यापारिकरुझानों का अध्ययन करना और अन्त में उसे उत्पादन की प्रक्रिया में डालना। इस पुस्तक के साथ भी इतना कुछ करना पड़ा। वैसे तो "गोदना" की परम्परा पर देश और विदेश में कुछ लोग लिखे गये हैं, किन्तु "गोदना " को एक विश्व–व्यापी कला–शैली मान कर, समाज के वंचित लोगों के लिए, "पढाई और कमाई" की एक विधि विकसित करना, यह भारत के इतिहास में पहली बार यहीं हुआ है। आज बिहार की अशक्षय महिलाएँ (और अनेक पुरुष भी) इस कला–माध्यम से आजीविका कमा रहे हैं, अपने आप में यह अनोखा है। इसलिए हम चाहते हैं कि इस पुस्तक के निर्माण की कथा प्रक्रिया रही है, इस पर संक्षिप्त प्रकाश अवश्य डालना चाहिए, ताकि लोक–संस्कृति और आजीविका विषय पर अनुसंधान करने वाले अध्येताओं और लोक–कला को अध्ययन के साथ ही आजीविका का माध्यम बना कर कार्य में लगे लोगों की सहायता हो सके।

दलित समुदाय में प्रचलित कला–परम्परा से पहली बार मैं उस समय प्रभावित हुआ था, जब मेरी आयु मात्र पन्द्रह वर्षों की थी। उन दिनों मैं एक घटना से ऐसा आहत हुआ कि समाज के वंचित लोगों को साक्षर बनाने में अपना सम्पूर्ण जीवन लगा देने का निश्चय कर बैठा। उन्हीं दिनों, मैंने अपने गाँव की एक दलित महिला को दीवार पर चित्र बनाते देखा। उस चित्र में हाथी पर एक आदमी बैठा था, उसके सामने एक पेड़ था, जिसकी बाँह जैसी फैली डालियों पर पक्षी बैठे थे। इस घटना से पहले, मैंने अपनी माँ को आँगन की भूमि पर, पिसे हुए चावल के श्वेत रंग से, मिथिला–परम्परा के 'अरिपन' बनाते देखा था और ज्यामितिक चिन्हों की मेल से बने विस्तृत आकार के आलेखन को देख कर अचंभित हुआ था। गौर से अरिपन को देखने पर मुझे लगा कि जिन ज्यामितिक चिन्हों, वृत्त, अर्धवृत्त, त्रिभुज, चौकोण और आड़ी–तिरछी रेखाओं के संयोग से अरिपन बना था, आखिर अक्षर भी तो उन्हीं चिन्हों की मेल से बनते हैं। मेरी माँ पढ़ी हुई हैं और मुझे प्रारंभिक शिक्षा भी से ही मिली थी। पहले तो मैंने समझा कि मेरी माँ पढ़ी–लिखी हैं, इसीलिए ज्यामितिक चिन्हों के प्रयोग से अरिपन चित्र बना रही हैं, किन्तु जब दूसरी बार किसी दलित महिला को चित्र बनाते देखा तो मैं सोच में पड़ गया। मैं जानता था कि उन दिनों दलित महिलाएँ और उनका पूरा समुदाय निरक्षर होता था। इसी कारणवश मैं सोचने लगा, क्या, दलित महिला पढ़ी–लिखी है? बिना पढ़े वह चित्र कैसे बना सकी? दूसरी बड़ी बात जो महत्वपूर्ण थी, और जिसने मेरा मन उस चित्र की ओर खींचा, वह उस चित्र का अनोखापन था। उस महिला के चित्र में बना हाथी, आदमी और पेड़ पुस्तकों में छपे चित्रों जैसे नहीं थे, बिल्कुल अलग दिखते थे। उस महिला के चित्र में एक सहजता थी, एक अपनापन था, लगता था जैसे उसके चित्र

बोल–बतिया रहे थे। मुझे लगा, वह चित्र का घरेलू संस्करण था। अगले दिन उस चित्र को मैंने अपनी कॉपी पर उतार लिया।

उन दिनों मैं साधारण चित्रों से अक्षर बनाने की सरलतम विधि खोजने में लगा हुआ था, ताकि स्कूल नहीं जाने वाले मजदूर बच्चे आसानी से अक्षर सीख सकें। दलित महिला को चित्र बनाते देख कर मैं समझ गया कि चित्र कोई भी आदमी बना सकता है, चाहे वह पढ़ा हो अथवा अनपढ़। इतना तो स्पष्ट हो ही गया था कि चित्र भी उन्हीं चिन्हों की मेल से बनते हैं, जिन चिन्हों से अक्षर बनते हैं। इसी अवधारणा के आधार पर मैंने चित्र से अक्षर बनाने और अक्षरों को उनके मिलते–जुलते आकार वाले अक्षरों के समूह में रखने, जैसे **उ ऊ अ आ / ओ औ अं अः / व भ क ख** आदि के आधार पर सजाने के बाद अपने तरह की एक वर्णमाला तैयार की थी। इस पद्धति में साधारण चित्रों को तोड़ कर अक्षर बनाये गए थे। इस वर्णमाला का मजदूर बच्चों और स्कूल नहीं जाने वाले बच्चों पर परीक्षण के बाद, मैंने अक्तूबर1985 में, अपने गाँव में ही, बच्चों के लिए एक रात्रि–पाठशाला, "**नाइट स्कूल**" शुरू किया। यहीं से वंचित लोगों के चित्र–कौशल को मैंने अपना पाथेय बनाया, किन्तु उस समय मैं न तो दलितों, वंचितों और मिहनतकश लोगों की कठोर जीवन–शैली से बहुत परिचित था और न उनकी परम्परागत कलाओं के विशाल संसार को ही नजदीक से जानता था। उस समय मैं सोलह वर्षों का था।

कला–माध्यम के रूप में गोदना के प्रतीकों से पहली बार मेरा साक्षात्कार 1972 में हुआ। उसी वर्ष मेरा विवाह मधुबनी जिले के जितवारपुर गाँव में हुआ था, जिस गाँव से, 1970 ईस्वी में, मिथिला–पेन्टिंग या मधुबनी–पेन्टिंग का बाजारीकरण शुरू हुआ। भारत सरकार का हस्तकला विपणन कार्यालय सन् 1970 में, मधुबनी में खुला। यह कार्यालय चित्र बनाने में सक्षम महिलाओं को हस्तनिर्मित कागज (22" / 32" साइज का) देता था और बने हुए चित्रों को, 1972 ईस्वी में, दस रुपये भाव से खरीद

लेता था। उस समय भागा गया कि चूंकि चित्रा बनाने का पारम्परिक व्यवहार कायस्थ और ब्राह्मण परिवारों में ही देखने को मिलता था, इसीलिए हस्तकला कार्यालय शुरू के वर्षों में मात्रा इन्हीं दो वर्ग की महिलाओं को कागज देता था। इन परिवारों में विवाह या मुण्डन (चूड़ाकरण) के अवसर पर, संस्कारोंह की विधिक तैयारी के अन्तर्गत, दीवारों पर चित्रा बनाने की परम्परा रही है। कायस्थ परिवार में, बेटे के विवाह के लिए, कागज पर कोबर, बाँस, बर्रे, कमलदह अरिपन और दशावतार (विष्णु के दस अवतार) बना कर उसमें सिन्दूर भर कर ले जाने की अनिवार्य परम्परा है, जबकि कोबर-घर का विशेष रूप से चित्राण ब्राह्मण और कायस्थ दोनों जातियों में परम्परागत है। इसके अतिरिक्त, देवोत्थान एकादशी, गंगा-संक्रान्ति और अन्य धार्मिक अवसरों पर भी दोनों जातियों के परिवार में विस्तृत भूमि-चित्राण करने की परम्परा रही है। इस प्रकार, इन दो जातियों की महिलाओं के पास चित्रा बनाने का पारम्परिक कौशल और पौराणिक कथाओं के अथाह विषयवस्तु थे। इसके अलावा, ये महिलाएँ शिक्षित परिवारों से आती थीं जिन्हें कलम पकड़ने का ज्ञान था। खास कर, कायस्थ जाति में परम्परागत रूप से शत प्रतिशत साक्षरता रही है। दूसरी ओर, अन्य जातियों, विशेष कर दलित समुदाय में स्थिति बिलकुल भिन्न थी। उनके समुदाय में साक्षरता नगण्य थी। उनकी उँगलियों को लेखनी पकड़ने का अभ्यास नहीं था, इसलिए दलित महिलाएँ कलम पकड़ कर कागज पर चित्रा नहीं बना सकती थीं। उनके पास ऐसे परम्परागत विषय भी नहीं थे जिनका चित्राण वे कर पातीं। शायद इन्हीं कारणों से हस्तकला कार्यालय दलित महिलाओं को चित्रा बनाने के लिए कागज नहीं देता था। आखिरकार, कुछ जागरूक दलितों के प्रयास करने पर, उनकी महिलाओं के नाम पर भी हस्तकला कार्यालय कागज का शीट देने लगा, लेकिन चित्रा बनाने की समस्या बनी ही रही। दलित महिलाएँ चित्रा नहीं बना पाने की स्थिति में, अपना कागज किसी कायस्थ या ब्राह्मण महिला को दे देती थी और ऑफिस से रुपये मिलने पर दोनों को पाँच-पाँच रुपये मिल जाते थे।

जितवारपुर में, मेरे ससुराल से सटे कुछ पासवान दलितों के घर थे। मैं जब जितवारपुर जाता था तब ये दलित महिलाएँ स्नेहवश मुझे अपने आँगन ले जातीं थीं और हास-परिहास करतीं थीं। एक दिन उन दलित महिलाओं से बात करते समय मैंने उनकी बाँहों पर गोदना के सुन्दर चित्रा देखा। मैंने उन्हें बताया कि यदि गोदना के मनमोहक प्रतीकों को कायदे से कागज पर उतार दिया जाय तो बहुत सुन्दर लगेंगे। ऐसा ही हुआ। दूसरी बार जब मैं उनसे मिला तो उन लोगों ने बताया कि गोदना के प्रतीकों से बने उनके चित्रा को बेहतर माना गया और दस रुपये की जगह उन्हें बीस रुपये मिले। यह 1972 ईस्वी की बात है। जल्द ही देश के कैनवास से उतर कर 'गोदना के अमिट प्रतीक गोदना पेन्टिंग' के रूप में, नये रूप-रंग के साथ, चित्रकला के बाजार में चमकने लगे। यह चमत्कार देख कर मुझे पहली बार समझ में आया कि लोकचित्रा से वंचित लोगों के लिए 'पढ़ाई के साथ कमाई' का कार्यक्रम चल सकता है।

दूसरी बार गोदना से मेरा सम्पर्क 1975-'76 में हुआ, जब मैं नेपाल में रह रहा था। उन दिनों पूरा भारत जय प्रकाशजी (जे पी) के आन्दोलन से उद्वेलित था। तत्कालीन प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी ने इमरजेन्सी लगा कर प्रजातन्त्रा को अपनी मुट्ठियों में बन्द कर लिया था। आन्दोलनकारियों को पकड़ कर जेलों में ठूँसा जा रहा था। बहुत राजनेता और आन्दोलनकारी युवक भाग कर पड़ोसी देश, नेपाल चले गए। मैं भी नेपाल चला गया। उन दिनों मैं अपने साथ होम्योपैथी दवाओं का एक छोटा बक्सा रखता था और मेटेरिया मेडिका पढ़ कर मुफ्त में लोगों का इलाज करता था। वहीं मेरे पड़ोस में एक पासवान दलित परिवार रहता था। उस परिवार से मेरी कुछ नजदीकी थी। एक दिन उस पड़ोसी महिला ने बताया कि उसकी बहन बीमार थी, बुखार लग रहा था। मैं उसे देखने गया। कपड़े से बाहर, उसके पूरे शरीर पर, नये-नये गोदना बने दिखे। गोदना के जलन से ही उसे बुखार लग गया था। मैं सुबह-शाम उसे देखने अवश्य जाता था। उसका नाम ढासमती था। ढासमती का विवाह पाँच-सात साल पहले हुआ

था, लेकिन उसके ससुराल वाले गौना करा कर अपने यहाँ नहीं ले जा रहे थे। इसका कारण यह था कि वह "अगोदन" थी। दर्द के डर से उसने अपने शरीर पर गोदना नहीं बनवाया था। हालाँकि हर साल जाड़े में उसके गाँव में गोदना गोदने वाली 'खोधपारनी', नटिनिया जरूर आती थी, मगर बासमती भाग कर कहीं छिप जाती थी। उसे गोदना करवाने में बहुत डर लगता था। उधर, परम्परा के अनुसार, अन्य जातियों में विवाह से पहले, लड़कियों के लिए, जिस प्रकार गंगा–स्नान आवश्यक माना जाता था, उसी प्रकार दलितों में, लड़कियों का गोदना करवाना आवश्यक होता था। बिना गंगा–स्नान किए लड़की को 'अगंग' और बिना गोदना करवायी दलित लड़की को 'अगोदन' या अपवित्रा कहा जाता था। दलितों में, ऐसी किसी दुल्हन को, ससुराल के रसोईघर में घुसने नहीं दिया जाता था। वह किसी को भोजन या जल नहीं दे सकती थी और न सन्तान उत्पन्न कर सकती थी। इसी नियम के तहत बासमती का गौना नहीं हुआ। बढ़ती उमर के साथ बासमती फूट कर जवान हो गयी, तब उसकी बड़ी बहन ने अपने पास जनकपुर बुला लिया और थारु जाति की गोदनहारिन से, अन्दर–बाहर, उसके पूरे शरीर पर गोदना करवाया। इलाज करते–करते हम दोनों मित्रा हो गए।बासमती ने अपने गोदना के अक्षय भण्डार से मुझे परिचित कराया। मैंने गोदना के अनोखे चित्रा को अपने मन में बसा लिया।

भारत में जब इमरजेन्सी टूट गयी, तब मैं भारत वापस आ गया। कुछ दिनों के बाद मैं दिल्ली चला गया। वहाँ मैंने कचड़ा चुन कर गुजारा करने वाले बच्चों (जिन्हें कचबचिया कहा जाता था) को संगठित किया और अपनी चित्रात्मक विधि से उन्हें साक्षर करने के अलावे उनके लिए बेहतर रोजगार की संभावना खोजने में जुट गया। हमारे समूह में सात वर्ष से पन्द्रह–सोलह वर्ष आयु–वर्ग के बच्चे थे। वे सभी नारकीय जीवन जी रहे थे। दिन भर गली–गली घूमते हुए कचड़ा चुन कर बेचने के बाद भी वे भूखे रहते थे। बीमार पड़ने पर बिना दवा के मरते रहो। ऊपर से पुलिस वालों को "चार आना हफ्ता" नहीं चुकाने पर बेंत की मार। आखिर तय हुआ कि कोई और रोजगार खोजा जाय। दिसम्बर का महीना था। हर तरफ ग्रीटिंग कार्ड बिक रहे थे। मैंने तय किया कि बच्चे कुछ दिन अभ्यास करके गोदना के प्रतीकों से ग्रीटिंग कार्ड बनावें और बेच। यह 1978 की बात है। बासमती की देह से उतारे गोदना के चित्रा उस अभियान में काम आया। मेरे एक सहयोगी मित्रा ने बच्चों को कागज और रंग खरीद दिया। दूसरे मित्रों ने कुछ दिनों तक बच्चों के खाने का प्रबंध कर दिया। हफ्ते भर के अन्दर बच्चों ने बहुत सारे कार्ड बना कर तैयार कर लिया। लोगों ने उन कार्डों को बहुत पसन्द किया। दाम दो रुपये। बच्चे कलाकार और अध्यवसायी बन गए। मैं बहुत खुश हो कर, अगली व्यापक योजना के साथ घर लौट आया।

दिल्ली में कचबचिया बच्चों को गोदना चित्रा के माध्यम से आजीविका का सम्मानजनक मार्ग उपलब्ध कराने में आंशिक सफलता से मैं काफी उत्साहित था। अब मैं गोदना देह–चित्र का उपयोग व्यापक क्षेत्रा में दबे–कुचले लोगों के उत्थान के लिए करना चाहता था। इसी विचार को ध्यान में रख कर, अगले दो वर्षों तक, गया–बोधगया और हजारीबाग के वृहत्तर भाग में, कई संस्थाओं के साथ मिल कर काम करता रहा। इसी क्रम में, गया जिले के वजीरगंज प्रखण्ड में 'ग्राम निर्माण केन्द्र, धरेया' और गया शहर में 'लोक जागरण केन्द्र' की स्थापना भी की। इस क्षेत्रा में भुइयाँ जाति के दलित बहुतायत में हैं। मिथिला के मुसहर इनसे मिलती–जुलती स्थिति के लोग हैं। समन्वय–आश्रम, बोधगया में कार्य करते हुए मैंने भुइयाँ बच्चों पर गोदना और मिथिला चित्रा के प्रतीकों के माध्यम से कई तरह के शैक्षणिक प्रयोग किया और भुइयाँ स्त्रियों के गोदना से स्वयं भी बहुत कुछ सीखा। अक्तूबर, 1981 आते–आते मैं दरभंगा लौट

आया, उस समय तक जो कुछ जान सके थे, उसका प्रयोग वंचित समुदायों, स्त्रियों के विकास में करने का मन बना कर।

मिथिला में मैं बालिकाओं और स्त्रियों के लिए काम करना चाहता था, ऐसा काम जिससे उन्हें सम्मानजनक आजीविका और चेतना–विकास के साधन एक साथ उपलब्ध हो सकें, बिल्कुल अपने अनुभव और श्रम पर। मैं किसी से सहायता या अनुदान लेकर यह कार्यक्रम नहीं चलाना चाहता था। इसके कई कारण थे। मैं सभी जाति की स्त्रियों के लिए काम करना चाहता था। मेरा मानना था कि समाज में पुरुष वर्ग किसी न किसी प्रकार के काम पा लेते थे, किन्तु स्त्रियाँ ही ऐसी थीं जिनके श्रम का कोई आर्थिक मूल्य नहीं लगाया जाता था। लिंग–भेद, जाति–भेद, कर्म–भेद, अनेक प्रकार के भेद और वर्जनाओं के साँकल से बँधी स्त्रियाँ, चाहे किसी जाति की हों, बेबस थीं। लेकिन स्त्रियों को संगठित करना मिथिला जैसे बद्धर पुरुष–प्रधान समाज में आसान नहीं था। दूसरी बात कि यहाँ छुआछूत (अस्पृश्यता) का चलन इतना प्रबल था कि सभी जाति की स्त्रियाँ एक साथ बैठ भी नहीं सकती थीं। ऐसी दशा में, बिना किसी साधन के, केवल अपने निश्चय और साहस के बल पर, इतना बड़ा काम खड़ा करना एक तरह से असंभव था। अपनी पत्नी, श्रीमती शिवा कश्यप के सहयोग के कारण यद्यपि कि मैं पूरा आशान्वित था कि किसी न किसी प्रकार कार्यक्रम जरूर चलता रहेगा, किन्तु जितना जो कुछ सोचा था, वैसा ही सफल भी होगा, इस भरोसे पर मैं किसी का सहयोग लेकर मुश्किल में नहीं पड़ना चाहता था। आखिरकार, बहुत अभाव में, घर के पास एक पेड़ के नीचे, नवम्बर 1981 में, गाँव की ही बालिका विभा, मीरा, शशिबाला और कुछ अन्य बालिकाओं के साथ कार्यक्रम शुरू हुआ। धीरे–धीरे लड़कियाँ जुटने लगीं। उस जमाने में स्त्रियों या लड़कियों के लिए कोई इस प्रकार का संगठन खड़ा करना भयानक सामाजिक अपराध था। गाँव के प्रमुख पुरुषों ने यद्यपि कि महिलाओं के लिए किसी प्रकार का कार्यक्रम चलाने से मना किया था, लेकिन मैंने काम जारी रखा। आखिर, जून 1983 में यह संगठन बिहार सरकार के साथ भारती विकास मंच नाम से रजिस्टर्ड हो गया। यह मूल रूप से, लोककला विषयों के साथ, "पढ़ाई और कमाई" के विद्यालय के रूप में शुरू हुआ, मात्र लड़कियों और स्त्रियों के लिए, पूर्णतः निःशुल्क विद्यालय। उस समय मात्र दो शिक्षक थे, मैं और मेरी पत्नी, शिवा किन्तु पद्धति को सहभागिता–आधारित, पार्टिसिपेटरी रखा गया, अर्थात छात्रा भी शिक्षिका के रूप में, अपने से कनिष्ठ छात्राओं को सिखाती थी। विषय के रूप में उस समय मात्र मिथिला लोकचित्र और परम्परागत सुजनी/कशीदा थे। मिथिला लोकचित्र में उपयोगितावाद का प्रवेश इसी समय हुआ। इससे पहले मिथिला चित्र में (मधुबनी पेन्टिंग नाम से) मात्र सजावटी चित्र बनते थे जिसका एक मात्र उत्पादन और बाजार मधुबनी में केन्द्रित था, मिथिला के शेष भाग के लोग चित्रकला के व्यावसायीकरण के लाभ से वंचित ही थे। अपने विद्यालय में हमने उपयोगी फैशन सामग्रियों को ही वर्ग बना दिया। थोड़े अभ्यास से लड़कियाँ जितना कुछ सीख लेती थीं, उस डिजाइन से छोटी वस्तु, जैसे टेबुल मैट और आगे जा कर, कुशन कवर बनाने लगती थीं। जैसे–जैसे छात्राओं का प्रशिक्षण बढ़ता जाता था, सामान का रेन्ज

भी बढ़ता जाता था। कुशन कवर के बाद दुपट्टे, जैकेट, कुर्ते और अन्त में साड़ियों के उत्पादन का क्रम था।

यहाँ एक बात बताना आवश्यक है कि उत्पादन, प्रशिक्षण और बाजार के इतने बड़े काम के लिए हमारे पास किसी प्रकार की पूँजी नहीं थी। मैंने अपनी पत्नी से उसका एकमात्र गहना माँगा, कान की बाली, और उसे गिरवी रख कर तीन सौ रुपयों का प्रबंध किया। यही हमारी प्रारंभिक पूँजी थी। लेकिन मेरा सम्पर्क देश भर के समाज-सुधारकों और सामाजिक संस्थाओं के साथ था। मैंने लोगों को अपनी योजना बतलायी, सबों ने इसे सराहा और अपना नैतिक समर्थन दिया। परिवर्तन का आन्दोलन चल निकला।

जनवरी 1984 से, जब हमारी छात्राएँ बड़ा उत्पादन करने में सक्षम हो गयीं, तब हम महानगरों में आयोजित होने वाली प्रदर्शनियों में भाग लेने लगे। अब गाँव के महापुरुषों ने हमारे विरुद्ध हिंसक अभियान छेड़ा। एक तरफ समाज के ठेकेदारों का विरोध कठोर होता गया, दूसरी ओर एक गाँव से दूसरे गाँव तक इस कार्यक्रम को फैलाने और दूर-दूर तक मिथिला की स्त्रियों को जागरूक बनाने का हमारा अभियान भी तेज होता गया। फैलाव के इस कार्यक्रम की मुख्य भूमिका में यद्यपि श्रीमती सिया थी, किन्तु दूर-दूर के गाँवों में रहनेवाली दलित महिलाओं तक गोदना-कला से कमाई और शिक्षा का आन्दोलनफैलाने में,लड़की होकर भी, शशिबाला और अनीता दास ने जो साहस दिखलाया, वह अत्यन्त सराहनीय है।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, सामान्य चित्र का शैक्षणिक उद्देश्य से प्रयोग करने के काम में मैं बहुत पहले से जुड़ा था। समय के साथ जो नया इसके साथ जुड़ा वह था लोक-कलाओं के अकादमिया और जीविकामूलक उपयोग का द्वार खोलना। मिथिला चित्रकला और गोदना चित्रकला के

[illegible] अनुवाद पुस्तक निर्माण के [illegible] कलाओं से पहली बार उपयोगिता एवं [illegible] और [illegible] भारत का निर्माण तथा [illegible] की कथा तो काफी लंबी है किन्तु यह कि [illegible] की थी कि सहज ही शशिबाला इस पुस्तक की लेखिका और भवीन दास जैसे छात्रों [illegible] इन दोनों बहनों ने गोदना चित्रांकन के लिए [illegible] पारंपरिक मानस्तरण पाठन देह चित्र फैशन वस्त्रों पर [illegible] आजीविका का साधन बना और पुस्तक का आकार ले सका।

[illegible] और अमेरिका [illegible] के पाठन के [illegible] के [illegible] के [illegible]

[illegible] आधी रोटी खायेंगे फिर भी स्कूल जायेंगे [illegible] बकरी चरती जाय मुनिया बेटी पढ़ती जाय [illegible] को रचना नहीं रहते हुई

[illegible]

विजयावशमी,24 अक्तूबर 2012 कृष्ण कुमार कश्यप

गोदना चित्रशैली

प्रचलन में थी

की दोयीं ओर पर सघन रूप से गोदना के चित्र बने थे। यह शव 2,500

कि इजिप्शियन महिलाओं के शरीर पर गोदना होते थे 4,000 – 3,500

के अन्तिम मिस्र-युग से भी पूर्व से रही हो

प्रयुक्त होते रहे हैं

सम्बन्ध में आगे विस्तृत उल्लेख किया जायगा

जापान में गोदना का इतिहास [illegible] से [illegible] समुदायों में भी गोदना हमेशा से लोकप्रिय रहा। 300 ई.पू. में जापान जाने वाले चीनी पर्यटकों ने अपने यात्रा विवरण में जापानी गोदना का विस्तृत उल्लेख किया है। 1603 और 1868 के मध्य जापानी गोदना का उपयोग मात्र "उकीयो-ए" जाल पर [illegible] बना कर वास करने वाली एक [illegible] समूहों में सीमित हो गया। इस काल में गोदना का व्यवहार शारीरिक श्रम करने वाले और वेश्यावृत्ति में लगे लोगों द्वारा किया जाता था और गोदना उनकी हैसियत का सबूत करता था। सन् 1720 से पूर्व का पता चलता है कि जापान में अपराधियों का दोष सिद्ध होने के बाद उनके नाक और कान

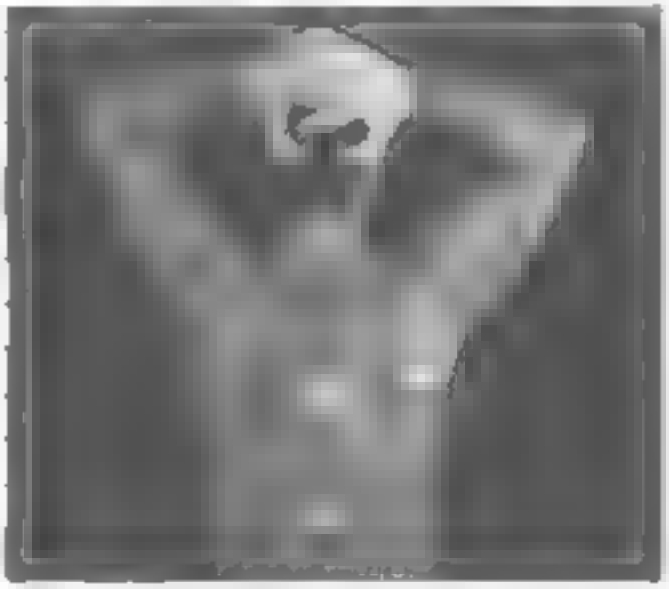

[illegible]

[illegible]

[illegible]

से किसी सदस्य का जीवन के अगले स्तर में मात्रा प्रवेश ही नहीं होता है बल्कि ये सांस्कारिक विधियों [illegible] को समझने में भी सहायता करती है

इस तरह के सांस्कारिक उपक्रमों के आयोजन का समय कबीले के बड़े-बुजुर्ग तय करते हैं जो किसी बालक या बालिका के युवा वय में प्रवेश करने पर मंजूर रखते हैं। बचपन और जवानी के संधिकाल में होने वाले संस्कार का पहला चरण पृथक्करण होता है जब किसी पुरुष सदस्य को अपने परिवार और कबीले से निश्चित समय के लिए अलग रहना पड़ता है यह समय 6 से 8 सप्ताह तक का होता है जब किसी युवा हो रहे बालक को भावी जीवन में जनजातीय भूमिका के लिए तैयार किया जाता है इस दौरान उसे जनजातीय विद्या और जीवनशैली का गहन प्रशिक्षण दिया जाता है इसी क्रम में उसके लिंग का खतना और कपाल का परिच्छेदन (बिना रंग का गोदना) [illegible] सामाजिक सम्मान का हकदार मानते हैं।

[illegible] घाव सूख जाने के बाद उसे विवाह करने की अनुमति मिल जाती है

[illegible]

[illegible] करने का प्रबल साधन है

[illegible] है जिसमें लिंग-मुण्ड के चारों ओर चीरे लगाए जाते हैं इस प्रकार के घोर पीड़ादायक कर्मकाण्डों से पहले अतिसम्वेदिता जैसी मनोवैज्ञानिक विधियाँ की जाती हैं, जिसके अन्तर्गत उपवास और गीत-नृत्य के द्वारा अनिद्रा की स्थिति बनाना सम्मिलित है। परम्परागत जनजातीय समुदायों में जिस प्रकार के पीड़ादायक कर्मकाण्ड लड़कों के लिए अनिवार्य हैं उसकी अपेक्षा लड़कियों के लिए निर्धारित विधियाँ कुछ सरल हैं पपुआ न्यूगिनी के कोइटा जनजाति में [illegible]

[illegible] के क्षेत्रों में गोरी चमड़ी और रोमिल चेहरे वाली ऐन जनजाति में [illegible]

[illegible]

ही उससे मिल सकती हैं, जो उसे उर्वरता से सम्बंधित कई [illegible]

[illegible]

[illegible] से हुआ है

[illegible]

गोदना से शिथिल थे।

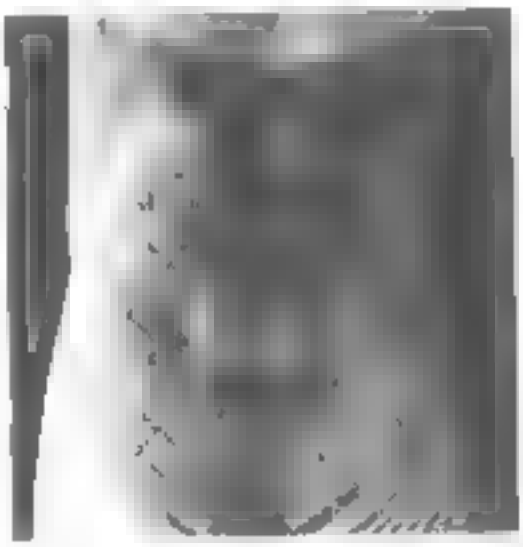

परम्परागत गोदना चित्रण एक [illegible] अग्नि-परीक्षा है जिसकी पीड़ा लम्बे समय तक सहन करनी पड़ती है। इसके घाव सूखने में कई सप्ताह लग जाते हैं। गोदना की विधि पीड़ादायक होने के अलावे बहुत खर्चीली होती है किन्तु उनके कबीले में मिठाई पदवी पाने के लिए यह कष्ट उठाना ही पड़ता है। सम्भवतः आयोजन के व्ययसाध्य होने के कारण ही इस अनुष्ठान में एक साथ छः लड़कों का गोदना करवाया जाता था जिसमें चार या अधिक कलाकार एक साथ बाँट कर काम करते हैं। गोदना का अनुष्ठान केवल लड़कों के

केन्द्रकाय्यक है जिसे शब्दों में बताया नहीं जा सकता

[illegible] और इस चरण को 'पुटे' अर्थात समापन कहा जाता है

[illegible] भग बना रहा

[illegible] कारण से अफ्रीकी देशों में भारत से भिन्न प्रकार का गोदना प्रचलित है। ये लोग अपने शरीर पर नश्तर लगा कर, गर्म धातु के टुकड़े से त्वचा को दाग कर और अन्य कई विधियों से अपने शरीर को अलंकृत करते हैं। चूँकि भारत में इस विधि का न तो प्रचलन रहा है और न ही साहित्यिक क्षेत्रों में इसकी चर्चा रही है इसलिए इस कला के लिए हिन्दी या अन्य स्थानीय भाषाओं में कोई पारिभाषिक शब्द नहीं है, किन्तु यह कला भी गोदना के अन्तर्गत ही रखी गयी है। इस देह-कला की रचना तेज़ चीरा लगाने वाले नश्तर लगाने वाले उपकरण से होता है, इसलिए यहाँ इस कला को हम 'नश्तर-कला' या 'नश्तर-गोदना' कहेंगे।

अंग्रेज़ी में इस कला को [illegible] है और विश्व कला बाज़ार में लोकप्रिय रहा है

[illegible]

[illegible]

[illegible] परिवर्तनात्मक नश्तर-गोदना धारण करना अनिवार्य है

[illegible]

[illegible] जैसे किसी व्यक्ति का हस्ताक्षर उसकी पहचान होता है

[illegible] नहीं होते हैं। प्रायः सभी शिकारी आदिवासी-समूहों में रक्त बहाना देवता/दुष्ट आत्माओं/शुभ आत्माओं या पितर-आत्माओं को अर्पित अर्घ की तरह होता है। इस [illegible] फ्रिकी और ऑस्ट्रेलियन जनजातियों में, खास कर जहाँ नवजात शिशु को नश्तर लगाया जाता है, कर्मकाण्ड की तरह पूरा किया जाता है। पपुआ न्यूगिनी में युवाओं के शरीर पर घड़ियाल की खाल जैसे डिजाइन का नश्तर-गोदना बनाया जाता है। उनका विश्वास है कि घड़ियाल ही मनुष्य का सृष्टिकर्ता है, इसलिए नश्तर लगा कर उसका स्वरूप धारण करना घड़ियाल देवता के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना हुआ और इस क्रिया के दौरान बहा खून वस्तुतः घड़ियाल देवता को अर्पित अर्घ है। इस क्रम में, दीक्षित की छाती, पीठ और नितम्बों पर घड़ियाल के दाँत जैसे डिजाइन उकेड़े जाते हैं

[illegible]

हैं इन चिन्हों से रहित, सपाट चमड़ी वाले सामुदायिक सदस्य को परम्परागत रूप से व्यापार करने आनुष्ठानिक गीत गाने नृत्य करने और अन्य समारोहों में भाग लेने की अनुमति नहीं होती है इथियोपिया की कारो जनजाति में पुरुष अपनी छाती पर नश्तर—गोदना बनवा कर प्रदर्शित करता है कि उसने दुष्मन कबीले के लोगों को मारा है इथियोपिया के ही सूरी लोग दुष्मन कबीले के पुरुष को मारने पर अपनी दाहिनी बाँह पर घोड़े के नाल जैसा आकार गोदवाते हैं, जबकि किसी दुष्मन औरत को मारने पर बाँयी बाँह पर वैसा आकार गोदवाते [illegible] आकर्षक माना गया है नश्तर लगाने से अथवा गर्म धातु द्वारा दागे गए चिन्ह जब सूख जाते हैं, तब बार-बार उसी स्थान पर नश्तर लगाने या दागने से त्वचा के [illegible] की तरह उठ जाते हैं और डिजाइन की एक विलक्षण रचना करते हैं गोदना डिजाइन के इस प्रकार को अंग्रेजी में केल्वाइड गोरावपकड़ कहते हैं इस तरह की रचना के लिए हिन्दी में कोई पारिभाषिक शब्द नहीं है किन्तु मुँह के तन्तुओं के फफनने से इस तरह की रचना [illegible] परिचायक होता है

[illegible]

है। स्पष्ट है कि नूबा लोगों का गोदना उनकी सामाजिक स्थिति और परिपक्वता से निर्धारित होते हैं। कई धार्मिक मान्यताओं के रहते हुए भी गोदना को उनके सौन्दर्य का चिन्ह माना जाता है किन्तु इसके साथ स्वास्थ्यजन्य कारण भी जुड़े हुए हैं। आँख के ऊपर बने गोदना से उनका मानना है कि, आँखों की ज्योति बढ़ती है। कनपटी पर बने गोदना माथे के दर्द को दूर करता है और पेट में लीवर के स्थान पर बने चार कोणीय तारा हेपेटाइटिस का निवारण करता है।

[illegible] और नूबा जनजातियों के बीच, सांस्कृतिक परम्परा के सन्दर्भ में, गोदना करवाने को लेकर किसी व्यक्ति की निजी इच्छा बहुत महत्व नहीं रखती है। [illegible]

[illegible]

[illegible]

अनुभव से होता है, भविष्य के सुखद निश्चय से मस्तिष्क में एक स्वचालित प्रक्रिया होती है, इन्डोर्फिन मुक्त स्राव करता है जो आध्यात्मिक अनुभूति का प्रेरक होता है, एक तरह की स्वप्निल स्थिति बनती है और आदमी दर्द भूल कर गोदना करवा लेता है

नृतत्व-वैज्ञानिकों का मानना है कि गोदना का चलन उतना ही पुराना है जितना मानव-सभ्यताओं का प्रादुर्भाव सहारा के तस्सीली पहाड़ी श्रृंखला से प्रागैतिहासिक (8000–5000 ई.पू.) प्रस्तर चित्रा मिले हैं मानवाकृति जिनके शरीर पर जहाँ-तहाँ कुछ चिन्ह बने हैं पुरातत्वविदों का मानना है कि ये चिन्ह गोदना-कला का प्रतिनिधित्व करते हैं मेक्सिको के विल्लाहरमोसा में ओलमेक प्रस्तर मूर्तियाँ मिली हैं जो लगभग 1000 ईसा पूर्व की हैं इन मूर्तियों के चेहरे और कंधे पर नश्तर-गोदना जैसी चिन्ह पाए गए हैं विश्व के अलग-अलग भागों में समय के साथ ही गोदना के औजारों और विधियों में, सुरक्षा की दृष्टि से परिवर्तन [illegible] रहा है, जो इस कला को नयी ऊँचाई प्रदान करेगा।

[illegible]

[illegible] होता है कि बाँस और लकड़ियों से बने घर के टाट पर नदी की पेंसिली [illegible] कठिन होता है। इसलिए ये अपने शरीर को काट–काट कर गहरे चिन्ह बनाते हैं ताकि देव-पितर प्रसन्न रहें

[illegible] स्थल नहीं रहते जहाँ बीरा लगाया गया था बल्कि वह फैलता है

[illegible]

लोगों ने जो दुनिया को जानने, जीतने और लूटने के इरादे से समुद्री साहसिक यात्रा पर निकलते थे आफ्रिकी समाज का रहस्योद्घाटन होते ही उन निश्छल निरीह लोगों पर क्रूरता का पहाड़ टूट पड़ा। गोरे अमेरिकी लोगों की दृष्टि में काले अफ्रिकी मात्रा पशु थे वे उन्हें जानवरों की तरह घेर कर जंजीरों में जकड़ कर उनके शरीर पर अपनी मालकियत की छाप दाग कर उन्हें अपना गुलाम बना कर अमेरिका लाने लगे। यह सिलसिला सन् 1680 ईस्वी से प्रारम्भ हुआ प्रायः हर रोज, ब्रीनेन और कोंगो के 'गुलाम-बन्दरगाह' 'संअम' चवतजद्ध से जहाजों का जत्था, हजारों आफ्रिकी स्त्री, पुरुष और बच्चों को लेकर अटलान्टिक महासागर के जलमार्ग से लगभग [illegible] अमेरिका पहुँचता था और फिर ब्रीटिश लोगों के हाथ उन्हें गुलाम बना कर बेच दिया जाता

और अमरिका के देशों में गोदना नये अर्थ के साथ प्रचलित है

भारत

बंगाल और उत्तर-पूर्व के आदिवासी क्षेत्र

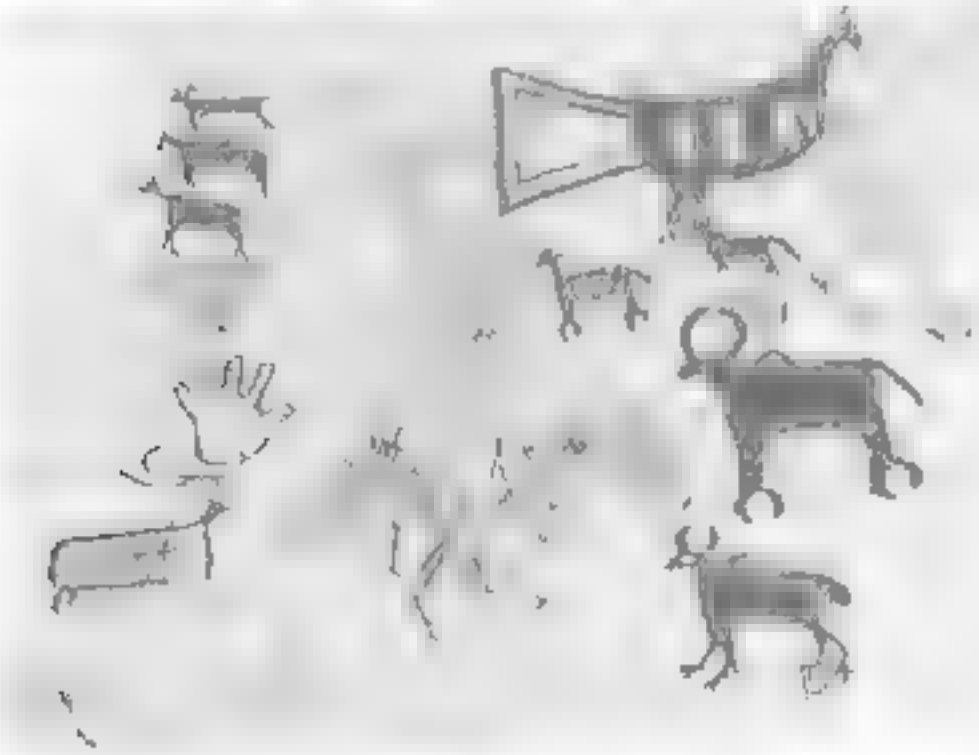

[illegible]

दिखलाये गए हैं।

[illegible]

भारतीय कला में अद्यतन उपस्थित है। विश्लेषकों का मानना है कि गोदना देह-चित्रों का अवतरण गुफाचित्रों से हुआ, जबतक कृषि से अनजान था। उस समय गोदना उनके समूह का परिचायक चिन्ह था। एक बार यह लेखकद्वय कर्णाटक की आदिवासी महिलाओं के शरीर से गोदना का संग्रह कर रहे थे जब संयोग से ऐसा प्रतीक सामने आया जो खरवाई

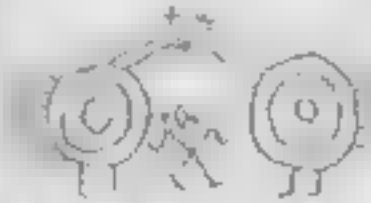

[illegible]

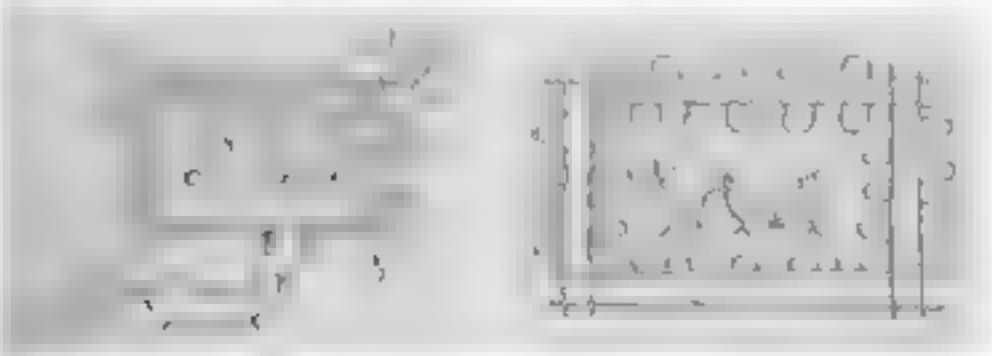

[illegible]

होता है

समुदाय में गोदना उनके समूह का परिचायक चिन्ह था

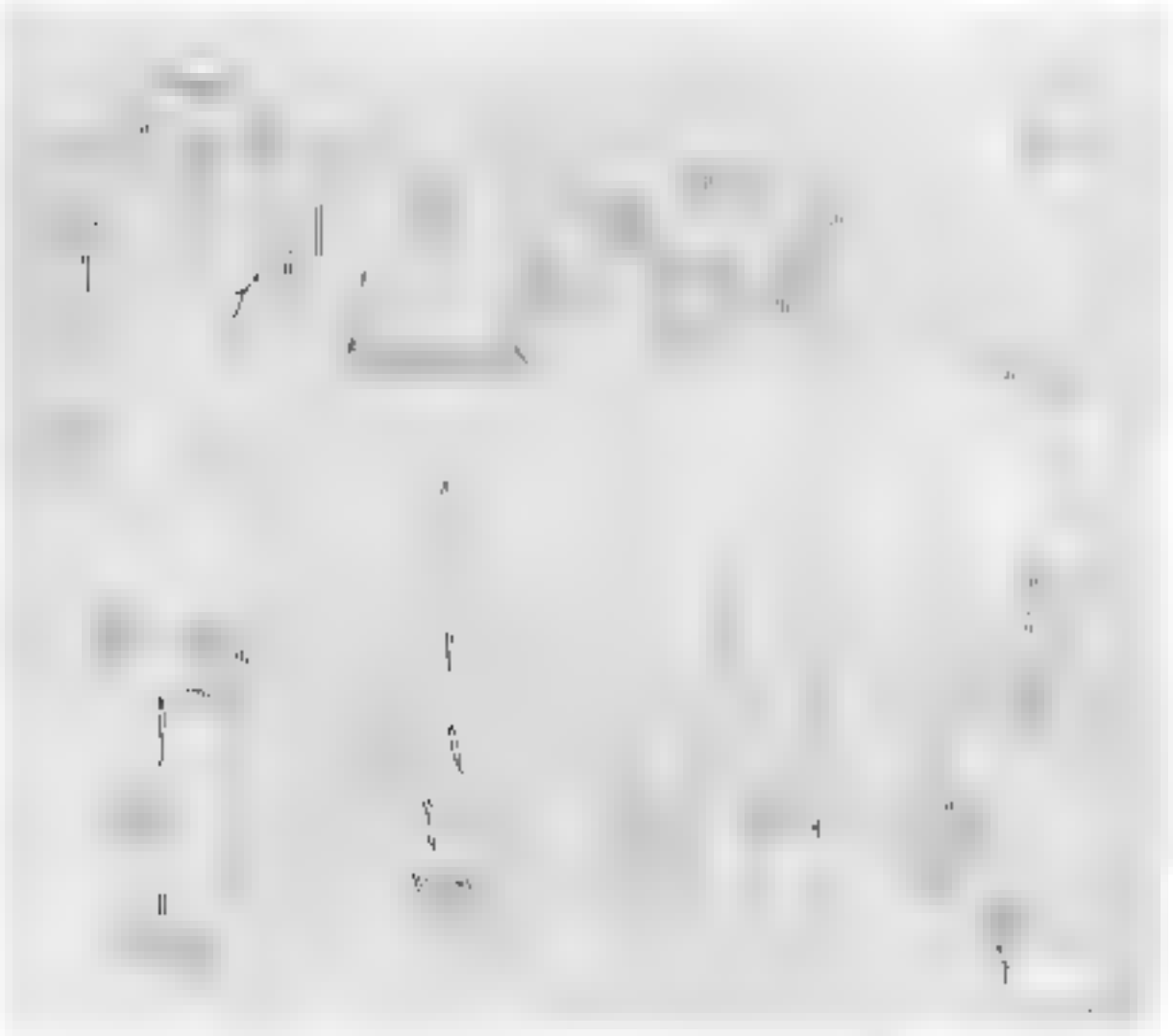

गोदना के छात्रों के लिए यह जानना आवश्यक है कि

[illegible] जीवन–शैली का संरक्षण करते आ रहे हैं। यह जीवन [illegible] है और इसीके अनुरूप, उनकी लोककलाओं, भित्तिचित्रों और गोदना पर वन्य जीवन [illegible] होती है।

[illegible]

रक्षा रखाव के लिए अनेकों गाँव बसे और गाँवों की जरूरतें पूरा करने के लिए नगर सभ्यता विकसित हुई

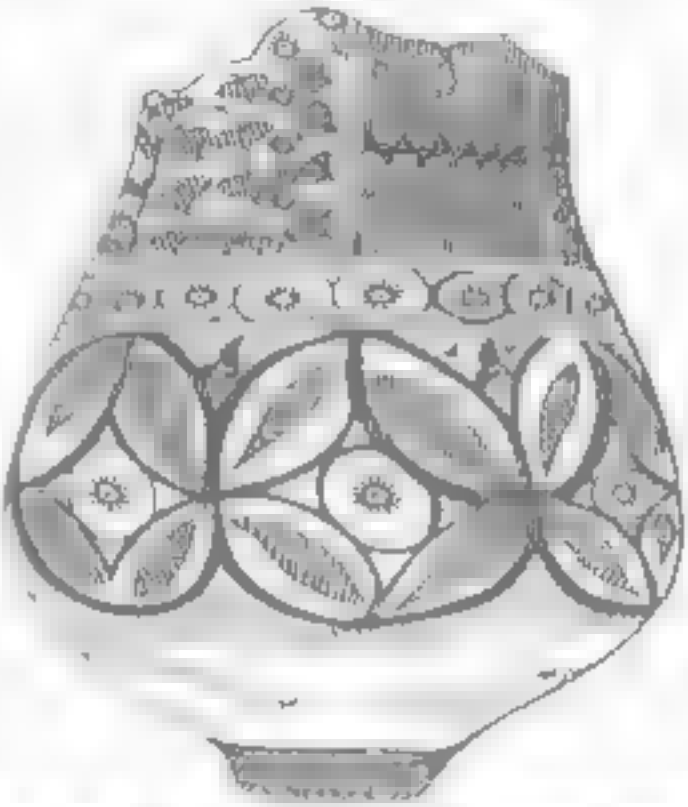

स्मृति को, गोदना के रूप में अपनी देह से लगाए रखा।

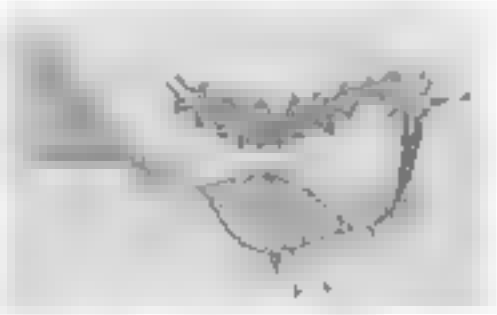

नहीं है, किन्तु इसकी पुष्टि मेघालय की लड़ू स्त्रियों ने भी की।

उसकी उसी अंग को कटवा दे जिससे वह आघात करता है: यदि शूद्र अपने से बड़ी जाति की स्त्री के साथ सम्भोग करे तो राजा उसका लिंग कटवा दे अथवा वह (शूद्र) स्वयं अपनी जान दे दे, और यदि वह अपनी रक्षा का प्रयास करे तो उचित यही है कि राजा उसका वध करे। शूद्र यदि किसी वेद-मन्त्र का उच्चारण करे तो राजा उसकी जीभ कटवा दे, यदि वह आसन बिस्तर बातचीत तथा राह में उच्च जातियों की बराबरी करे तो राजा उसे सी प्रण का दण्ड दे।' इसी नियम के अधीन, शम्बूक नामक शूद्र द्वारा तपस्या

स्त्रियों के सम्बंध में मनु ने व्यवस्था दी कि —

हास्य आदि के द्वारा मनुष्यों के शील और [illegible] है इसलिए स्त्रियों के विषय में बुद्धिमानों को कदापि असावधान नहीं रहना चाहिए।' आर्यों की महान (?) संस्कृति में, सभी वर्णों की स्त्री पराधीनता के दोहरे बंधन में जकड़ी हुई थी। विशेष रूप से यौन मामलों में उसकी अपनी किसी इच्छा का स्थान नहीं था बल्कि ब्राह्मण ग्रन्थों ने, समागम के लिए पति को बलात्कार करने का अधिकार भी दे रखा था 'बृहदारण्यकोपनिषद' के चौथे ब्राह्मण में उल्लेख है कि —

स चेदस्मै न दद्यात्कामयेनामवक्रीणीयात् सा चेदस्मै नैव दद्यात् काममेनां यष्ट्या वा पाणिना वोपहत्यातिक्रामेदिन्द्रियेण ते यशसा यश आददे इत्ययशा एव भवति।

[illegible]

[illegible]

राजा के रूप में प्रसिद्ध, मिथिला के राजा जनक भी ब्राह्मणों को शूद्र-उपहार देते थे और यह कार्य करते हुए उन्हें कभी धर्म-संकोच नहीं हुआ। बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार महान दार्शनिक याज्ञवल्क्य भी गुलाम-उपहार लेने वालों में सम्मिलित थे आगे चल कर गुलामों की खरीद-बिक्री शुरू हुई। विद्यापति के समय में तुर्क मुसलमानों के दबदबा के कारण हिन्दुओं की दशा बहुत खराब थी, किन्तु उस समय भी शूद्रों की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ 'कीर्त्तिलता' में जौनपुर के बाजार में, अलग-अलग जगहों पर, पुरुष-गुलाम और स्त्री-गुलामों की बिक्री का उल्लेख हुआ है बीसवीं शताब्दी आते-आते गुलामों की खुलेआम बिक्री तो समाप्त हो गयी लेकिन मिथिला में 'बहिया' के नाम से उनका अस्तित्व बना हो रहा

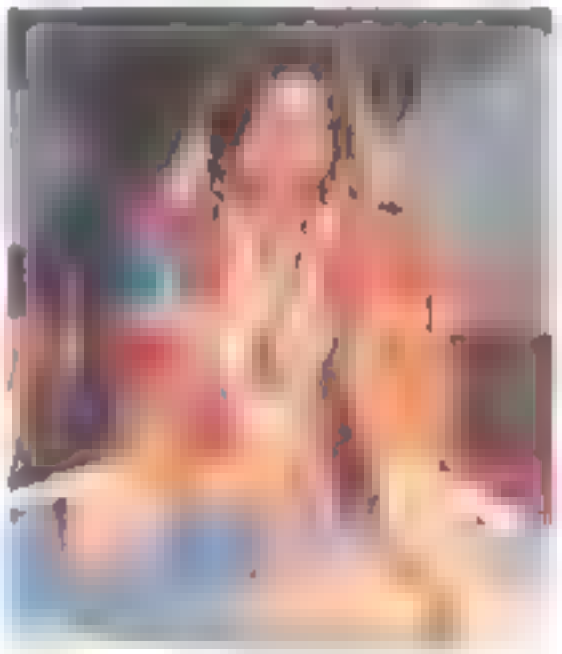

नहीं पता है कि इनके गोदना के दर्द की कहानी कितनी गहरी है

गीत इस प्रकार है —

जानि जान, सोहरो दरदिया सारी रतिया है जान

[illegible]

कठिन साधना का प्रतीक है। गीत इस प्रकार है —

गोरी कहमा गोदौले [illegible] गोरी कहमा गोदौले [illegible] पिया के [illegible] गोरी कहमा [illegible] गोरी [illegible] आरे [illegible] बाँकी [illegible] दुनू जोबना,गोरी कहमा गोदौले गोदना।"

[illegible]

के लिए लेखक का "मिथिला अरिपन" देखें)

[illegible]

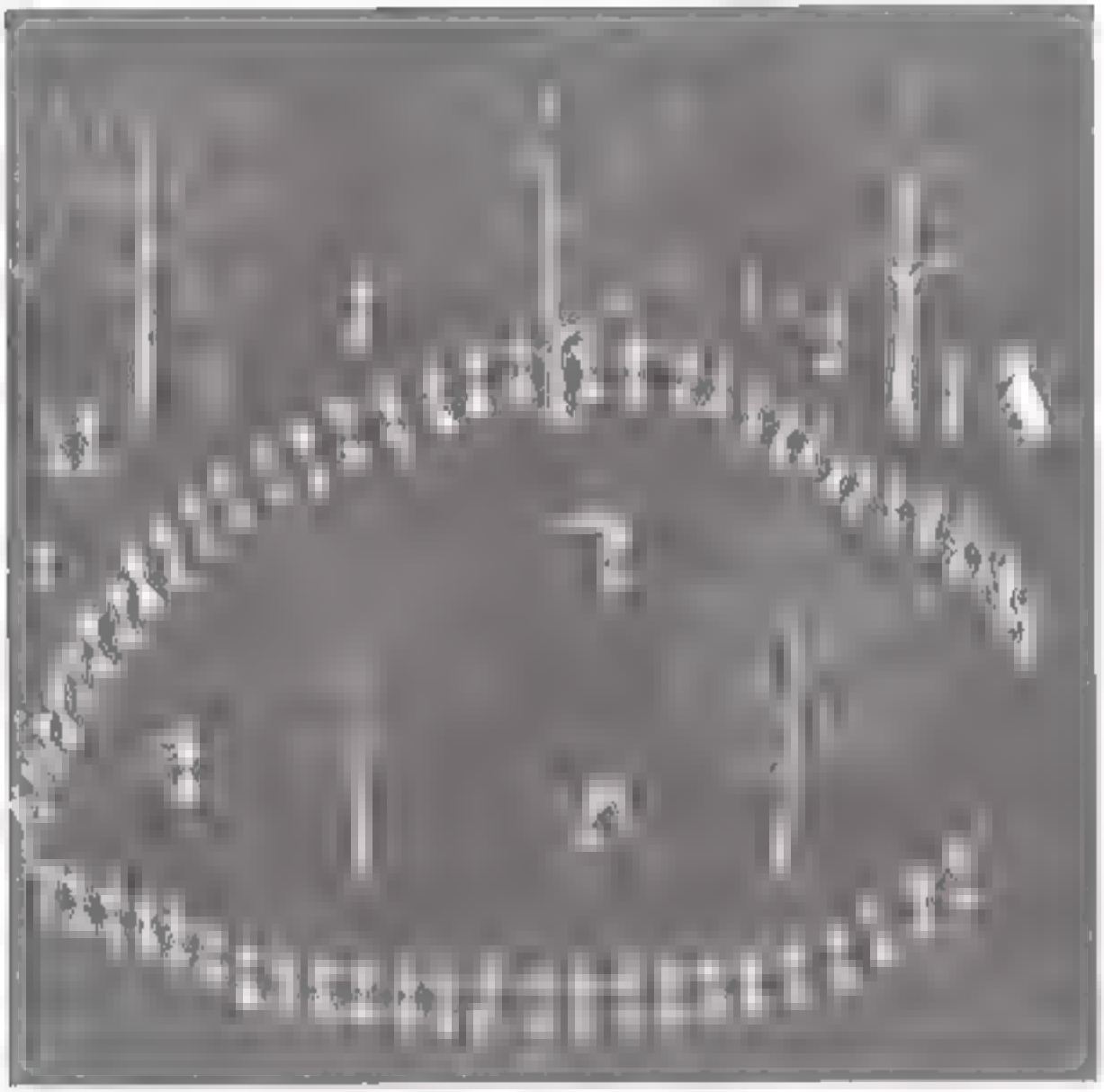

जिस प्रकार बिहार का मिथिला [illegible] प्रिय है, उसी प्रकार छत्तीसगढ़ मध्य प्रदेश, उड़ीसा के आ[illegible]सी लोकनिधि भी कला-बाजारी के मुख्य आकर्षण होते हैं

[illegible] कह कर किसी ने पूर्वजों की स्मृति कह कर तो किसी ने उसे धूर्ति मान कर धारण कर [illegible] इतिहास ने बहुतों को भुला दिया मगर गोदना की दह[illegible] उससे जो चिपकी सो चिपकी ही रही। कितने रा[illegible] और फिर गोदना की अस्मि[illegible] नहीं हुई इसे शूरों ने भी [illegible] भी स्त्रियों के तन पर इसकी बाहरी छाप दूसरों के लिए होती है जबकि [illegible]

[illegible]

आधुनिक युग में आदिवासियों और दलित समुदाय से बाहर के समाज में गोदना शरीर को आकर्षक बनाने के एक साधन के रूप में देखा जाने लगा है। कला की अन्य शाखाओं के अनुरूप ही [illegible] फैशन की दुनिया में एक कला है, जिसके साथ सौन्दर्यबोध की अनुभूति, धैर्य और कलात्मक निपुणता जुड़ी हुई है। फैशन के तौर पर गोदना बनवाने वालों का मुख्य उद्देश्य दूसरों से भिन्न दिखना, आकर्षक दिखना है [illegible] आधुनिक डिजाइन बनाए जाते हैं

गोदना बूटी

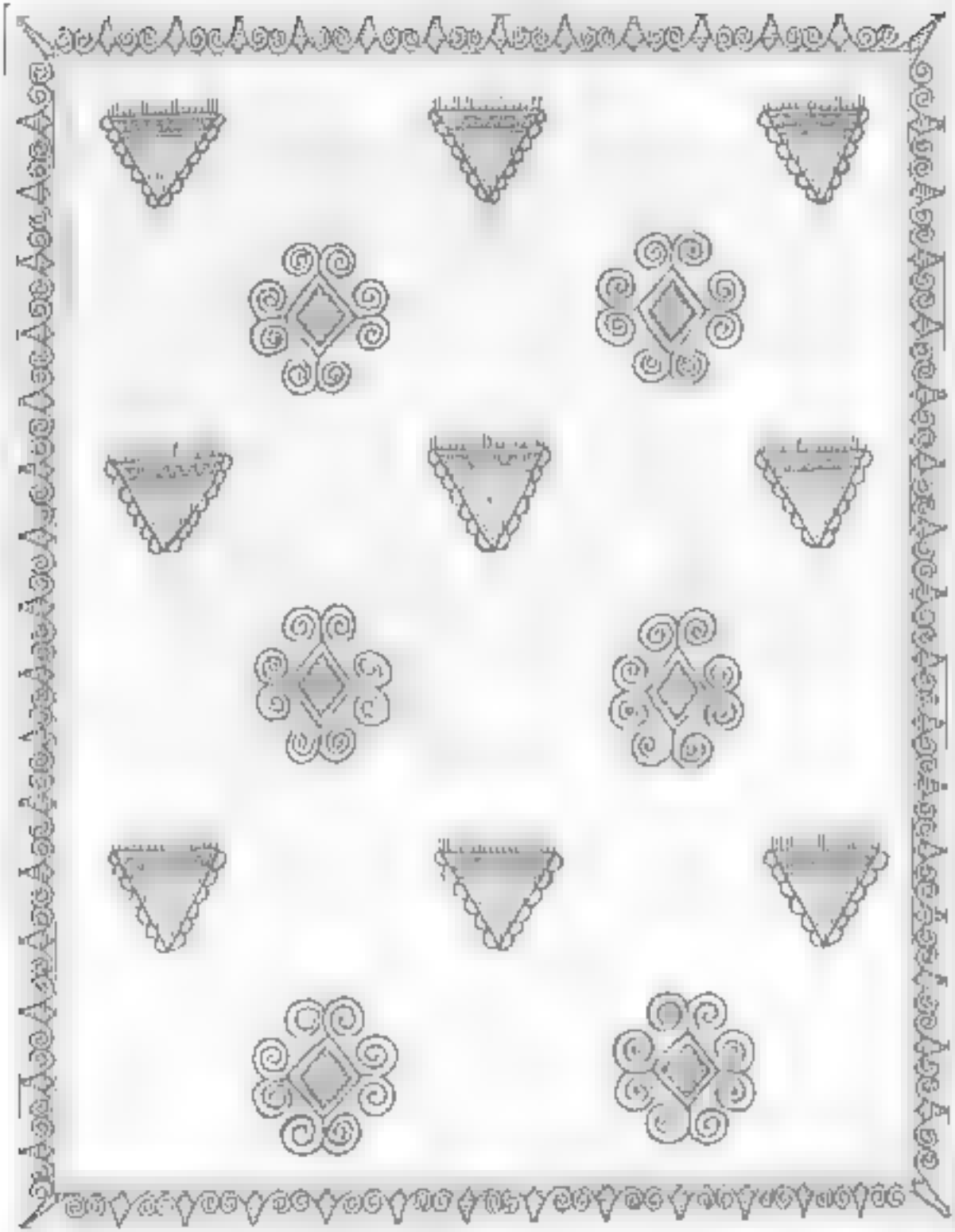

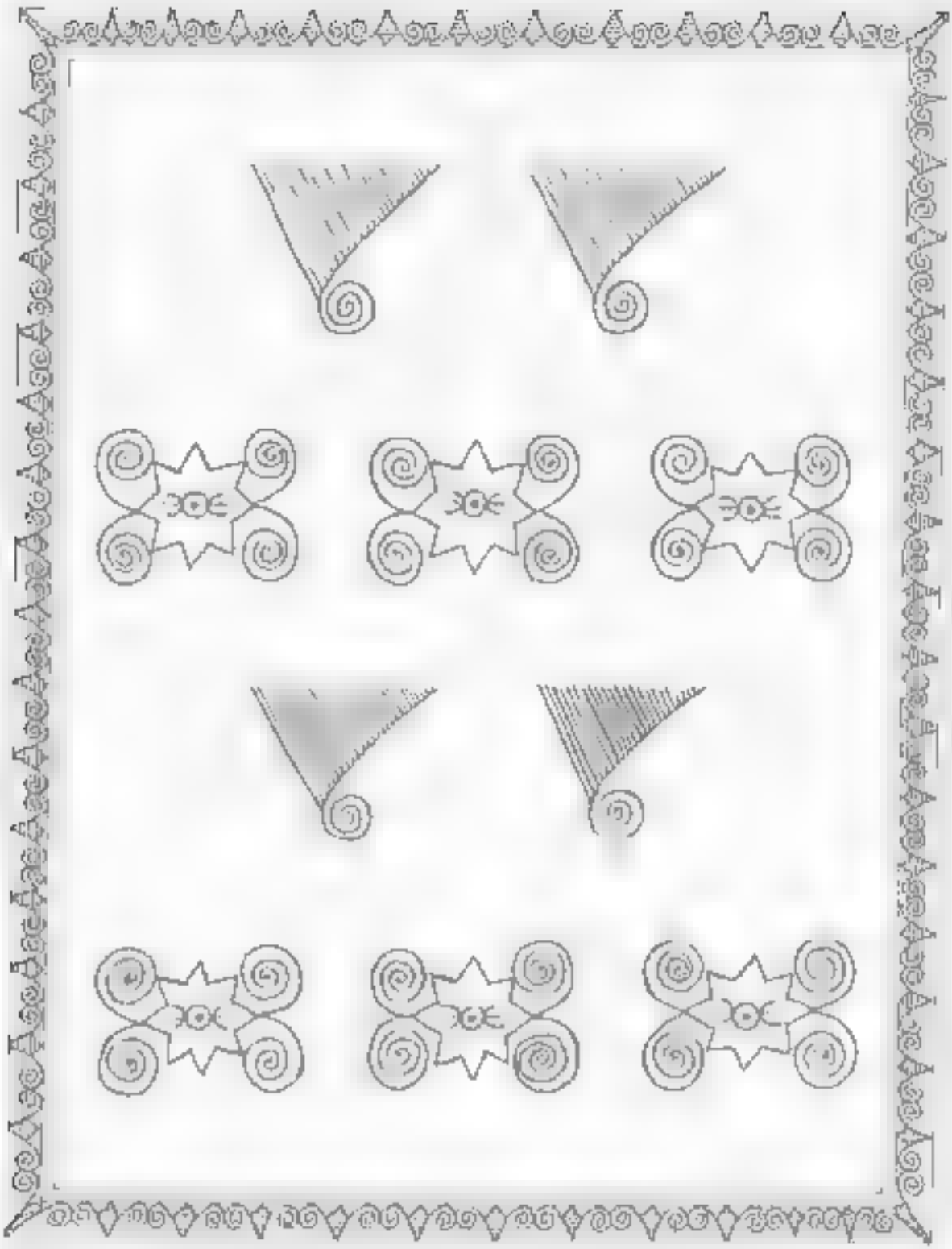

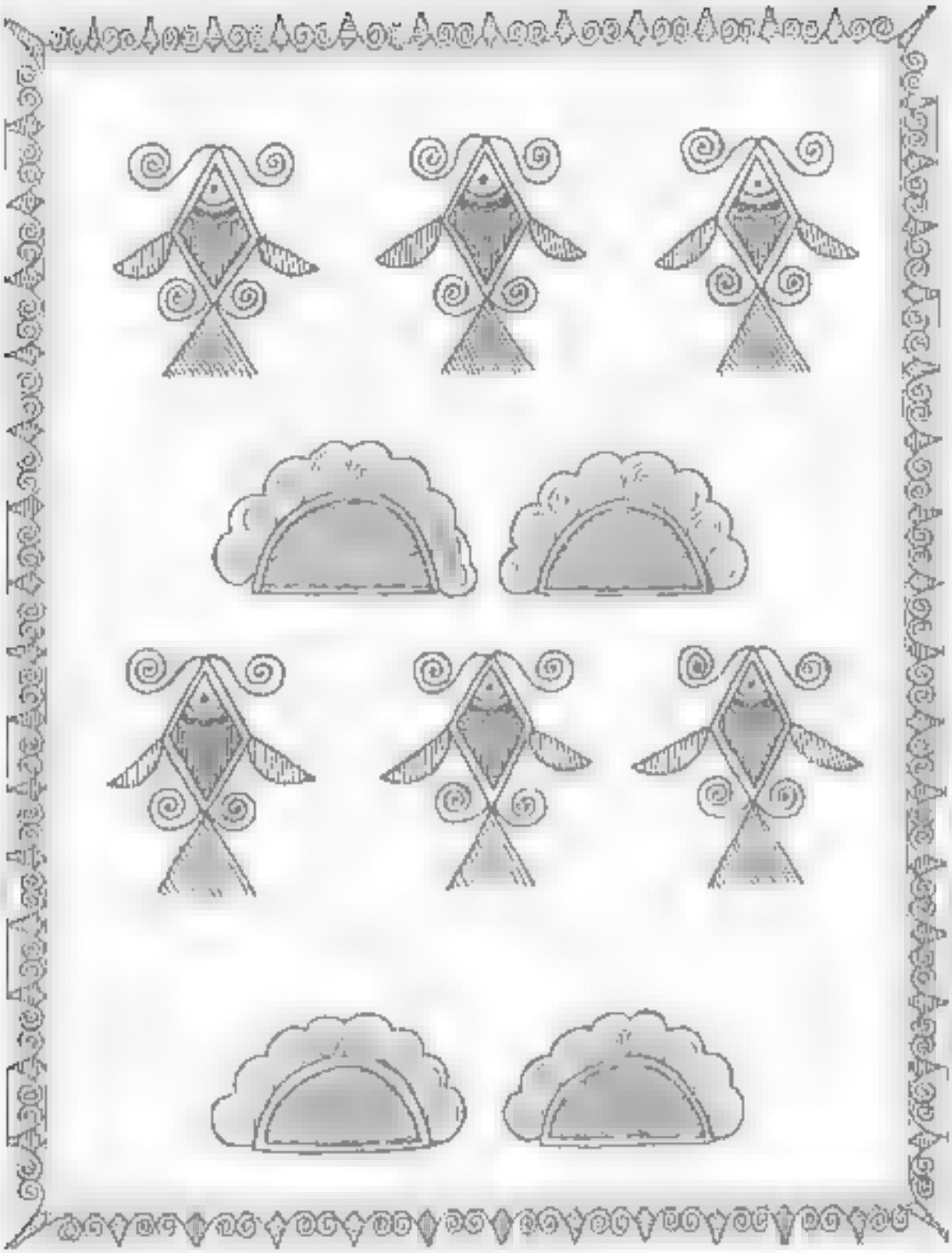

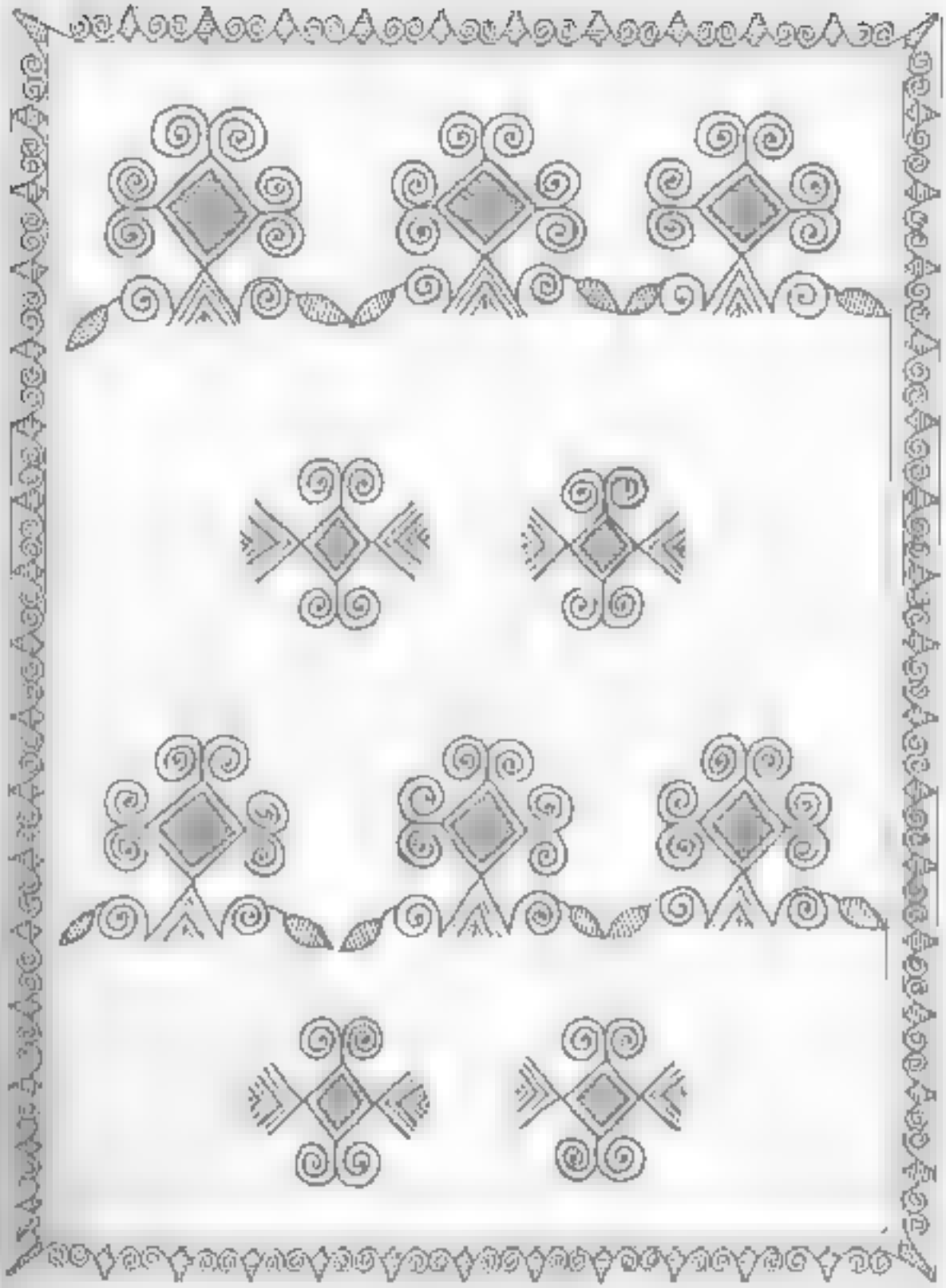

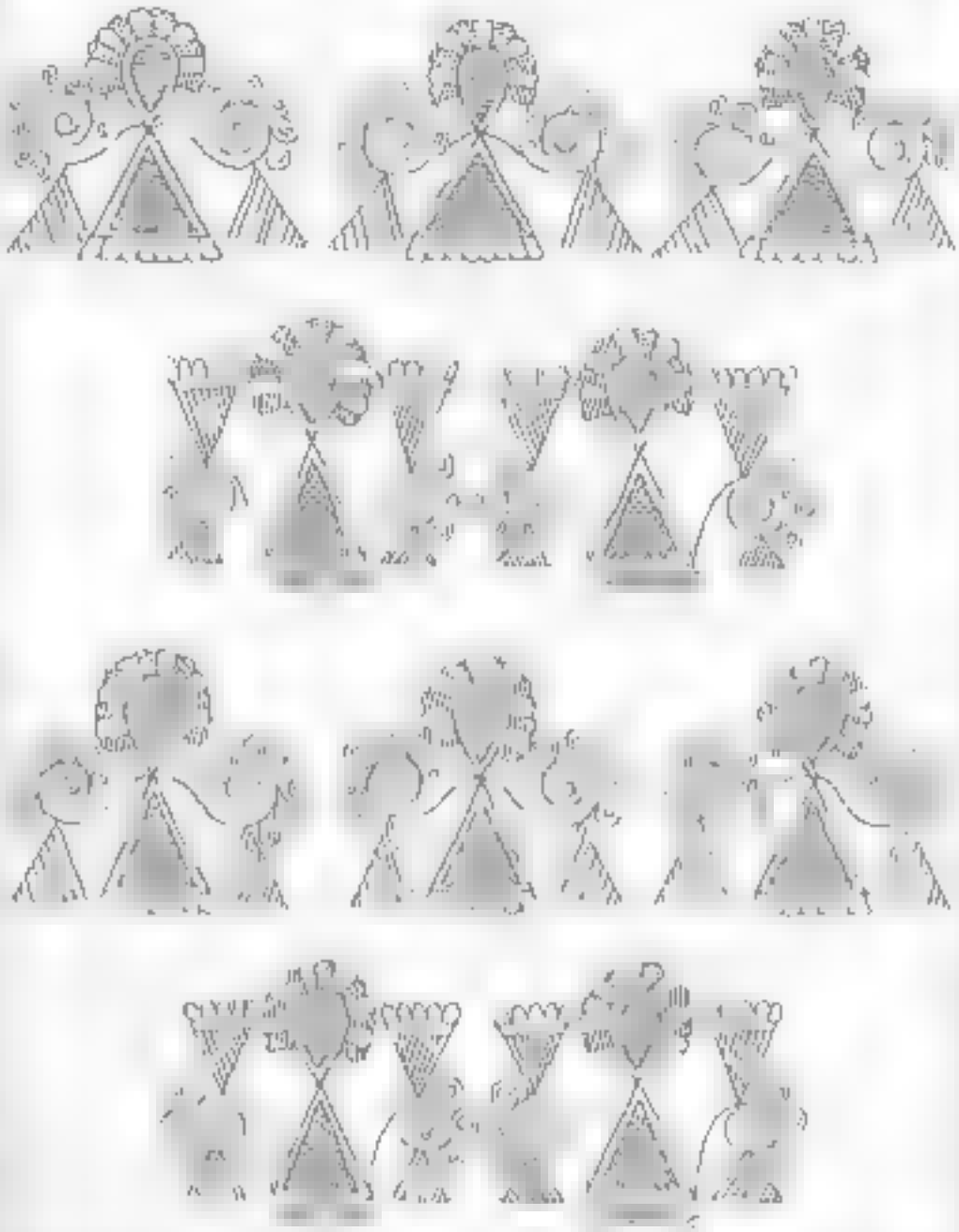

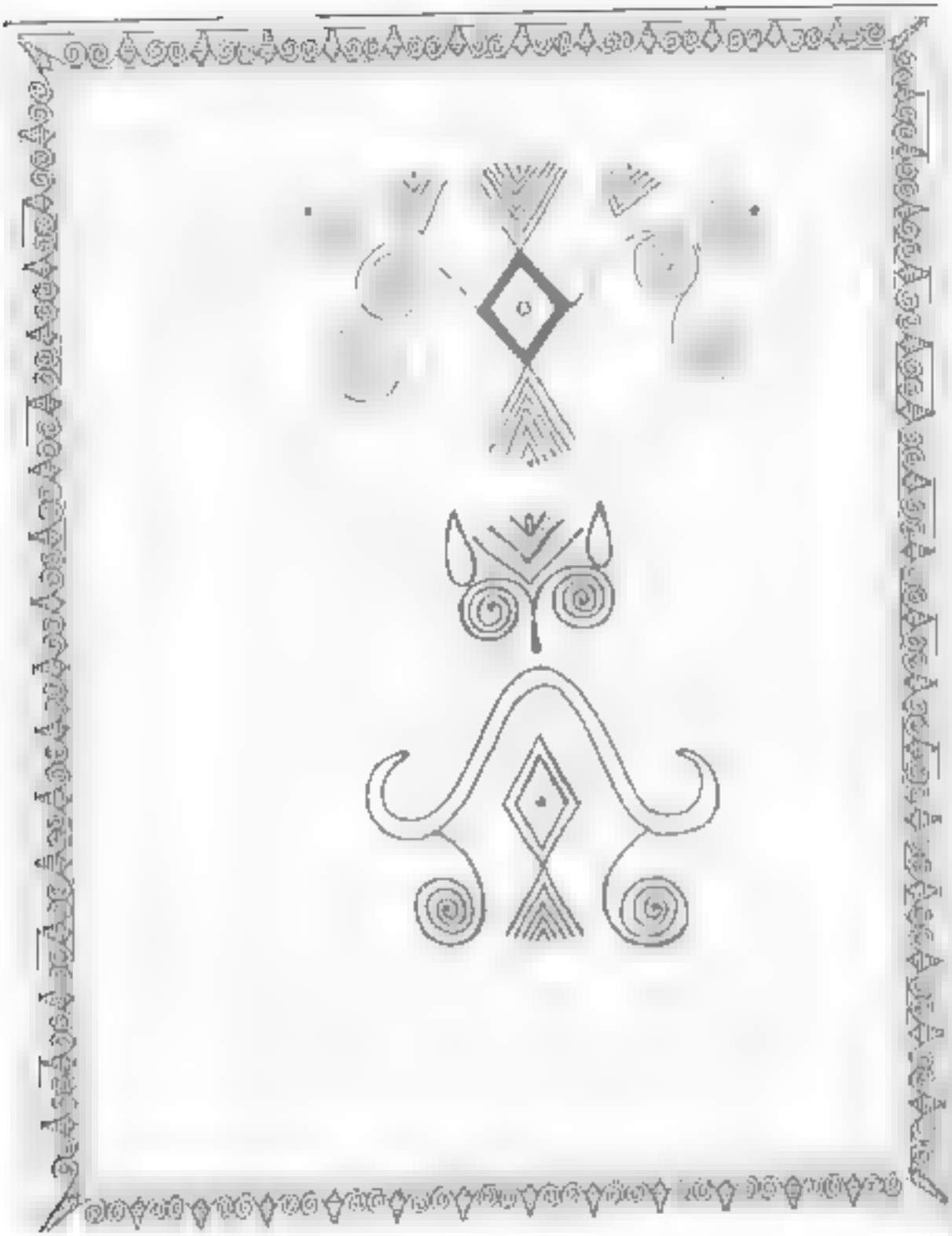

गोदना मोहर

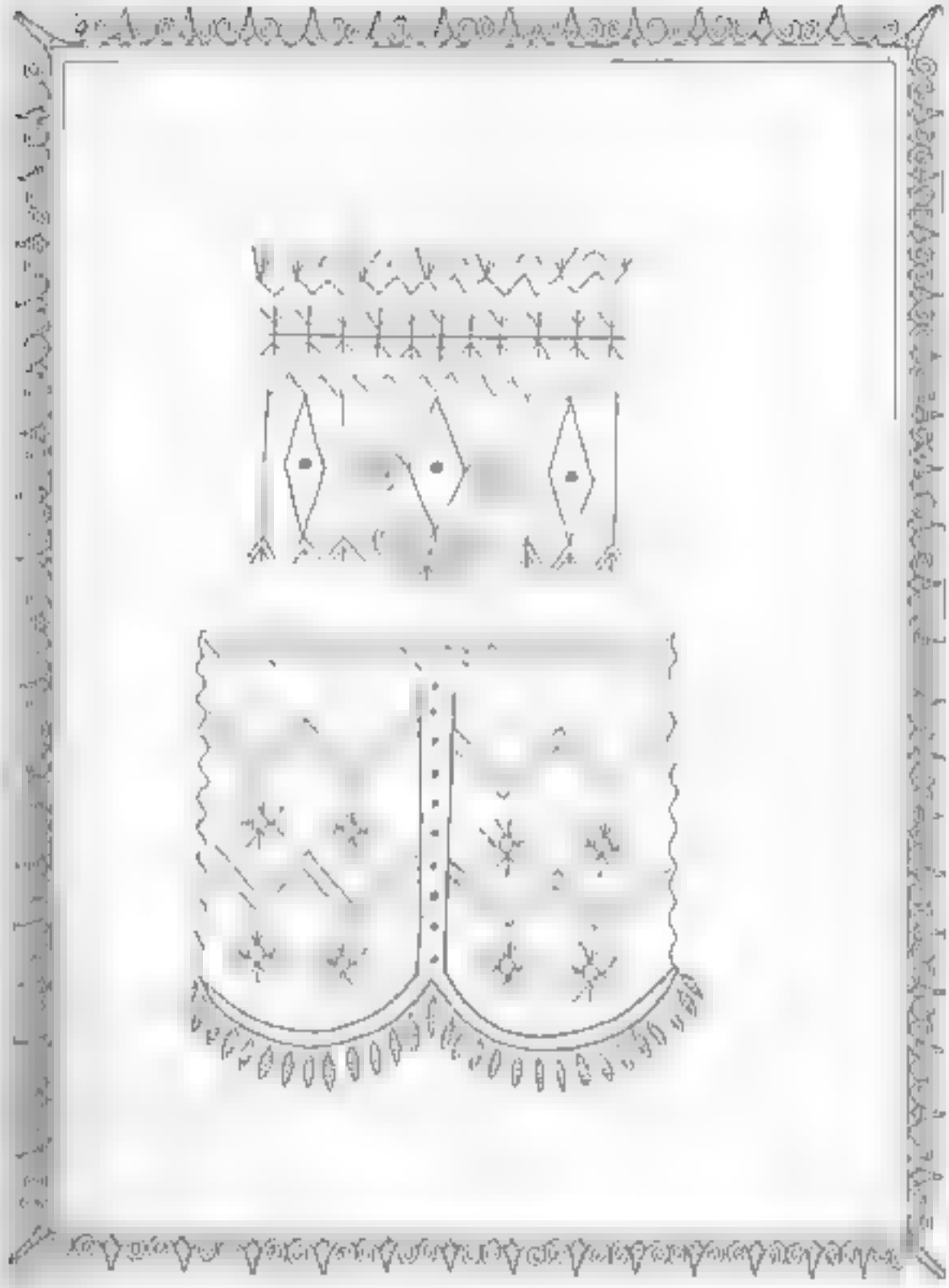

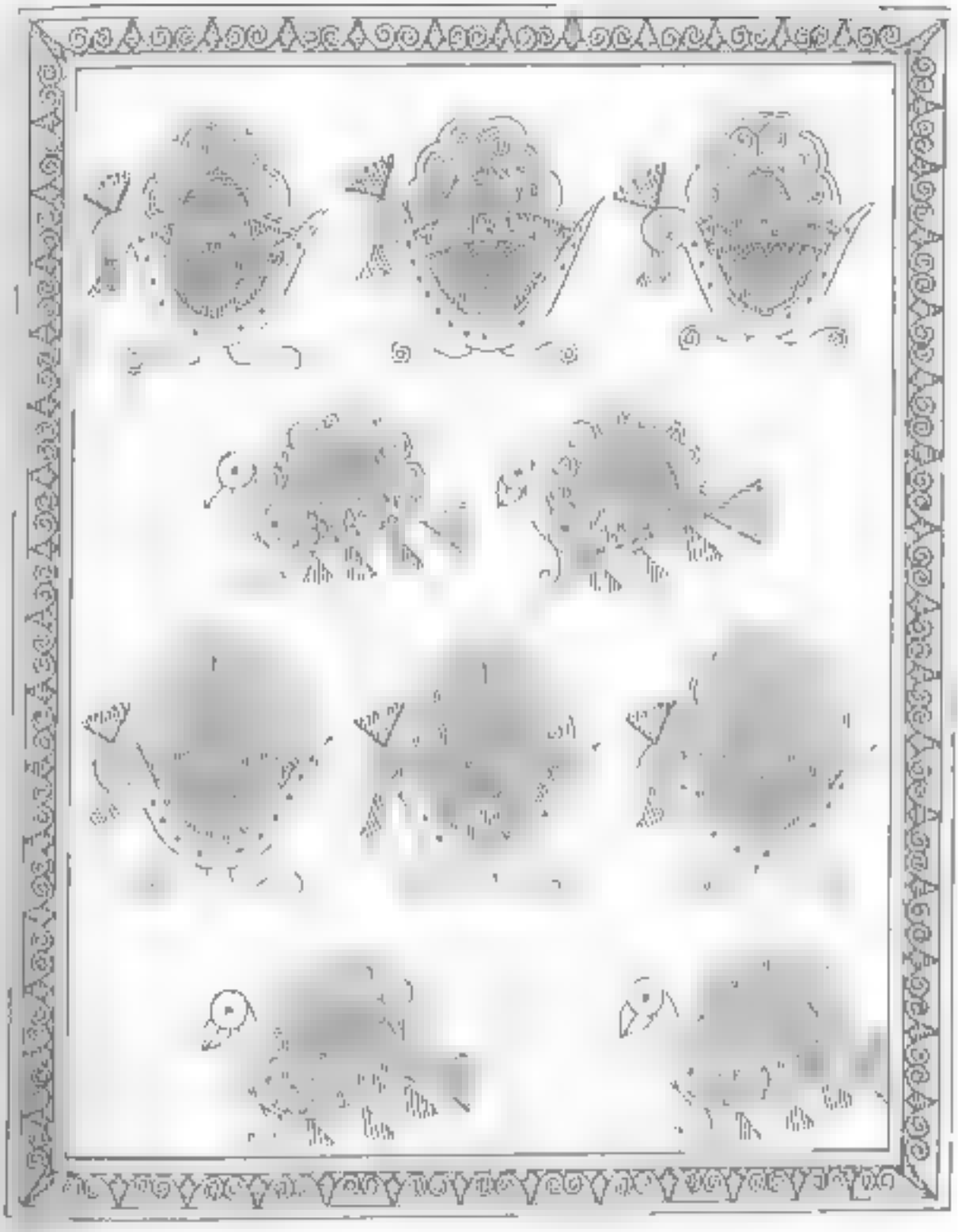

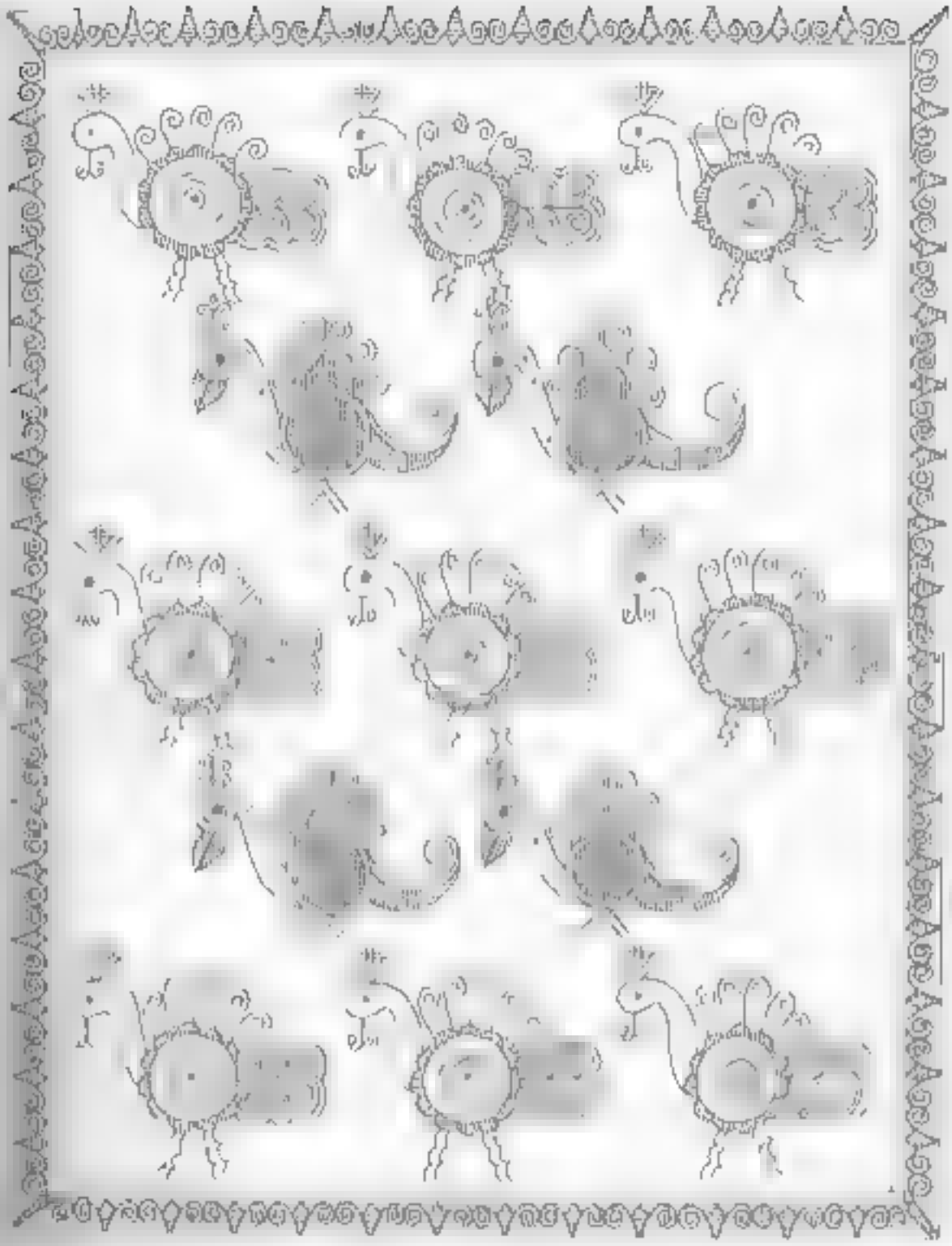

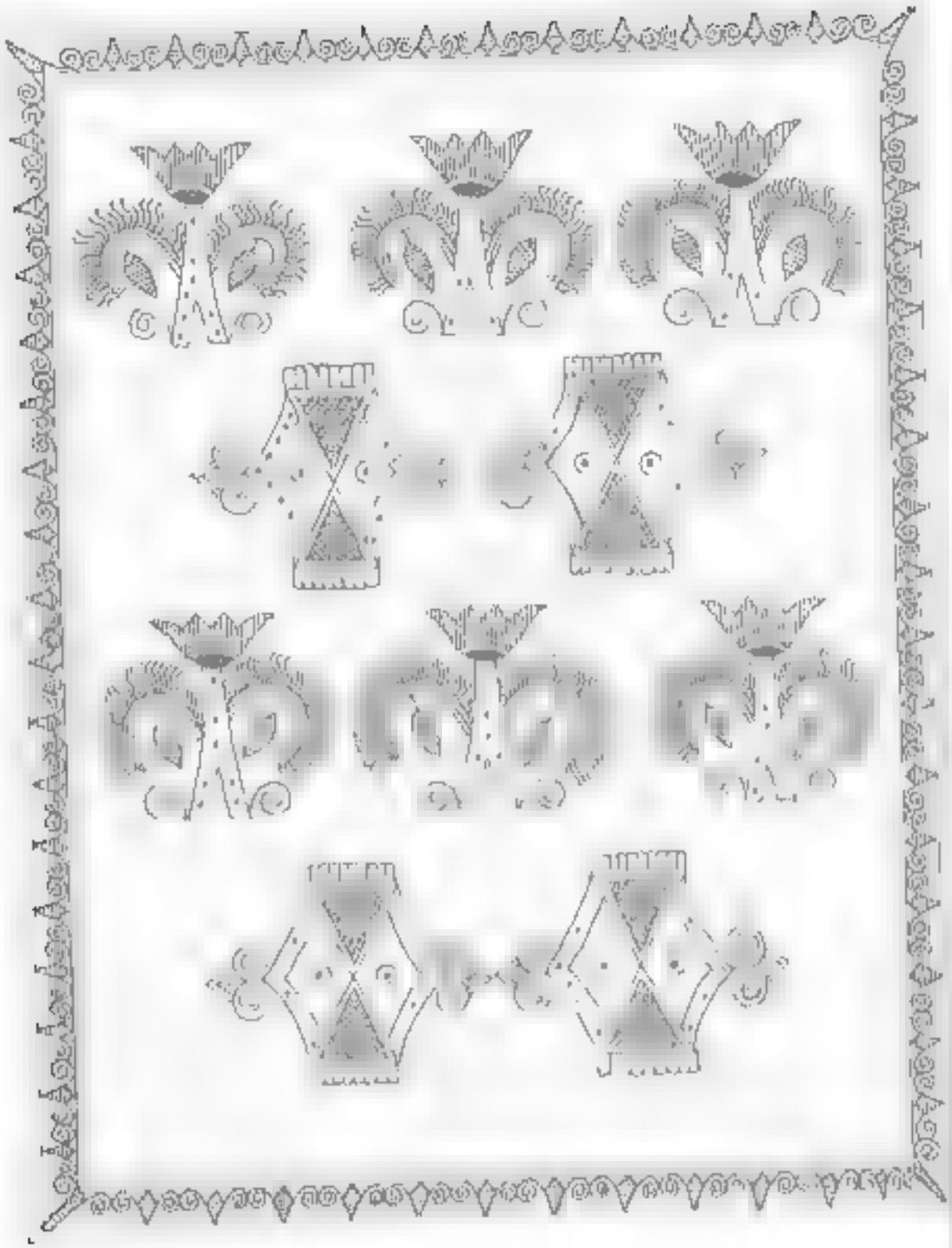

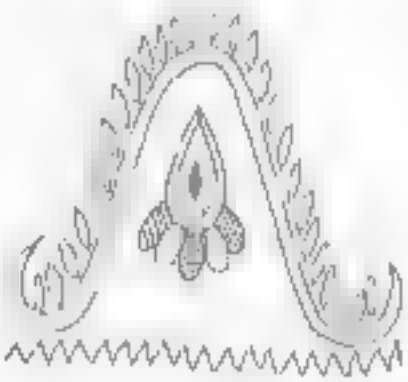

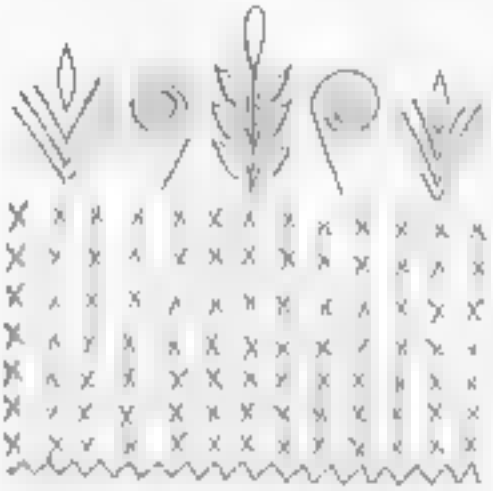

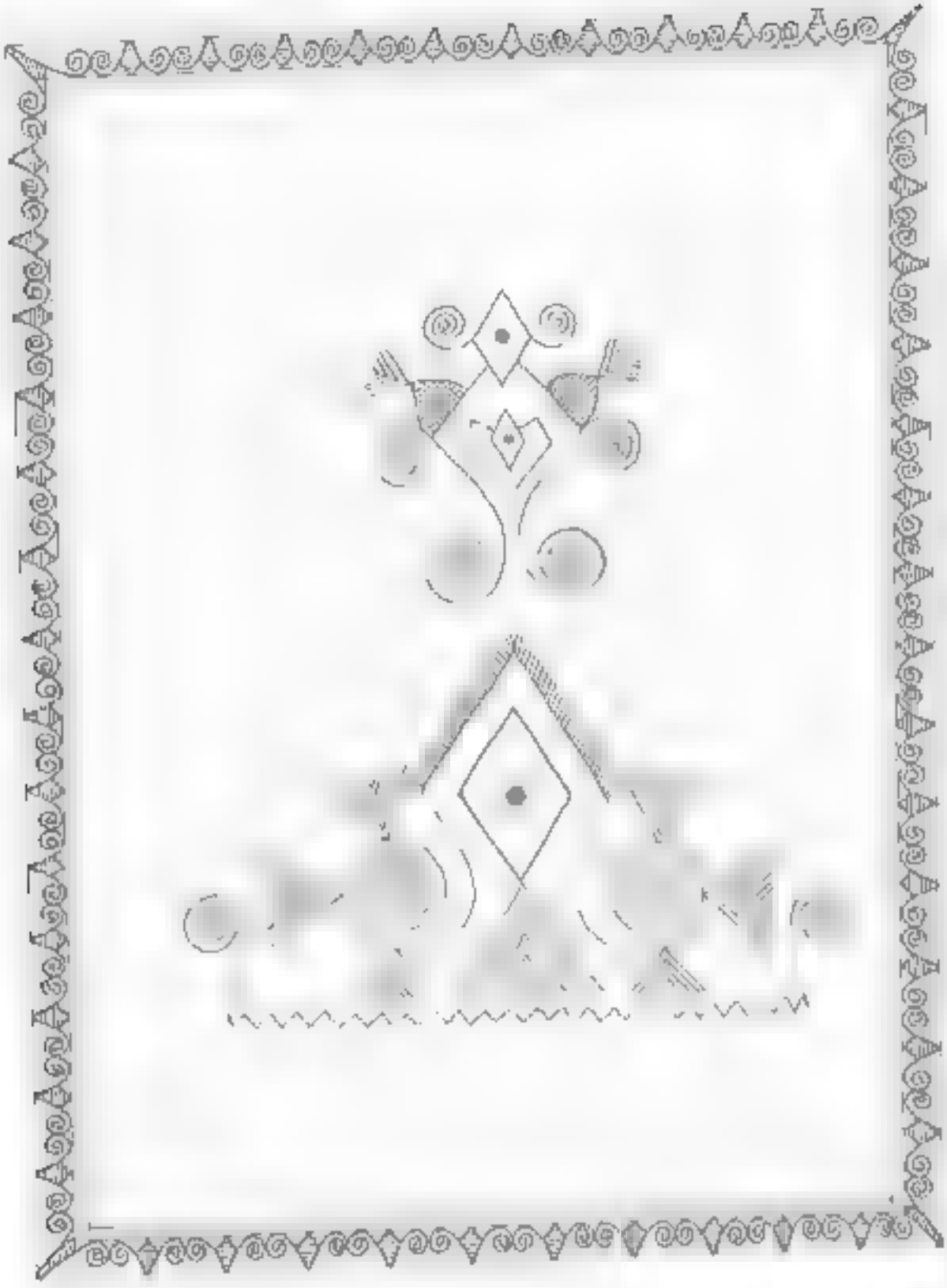

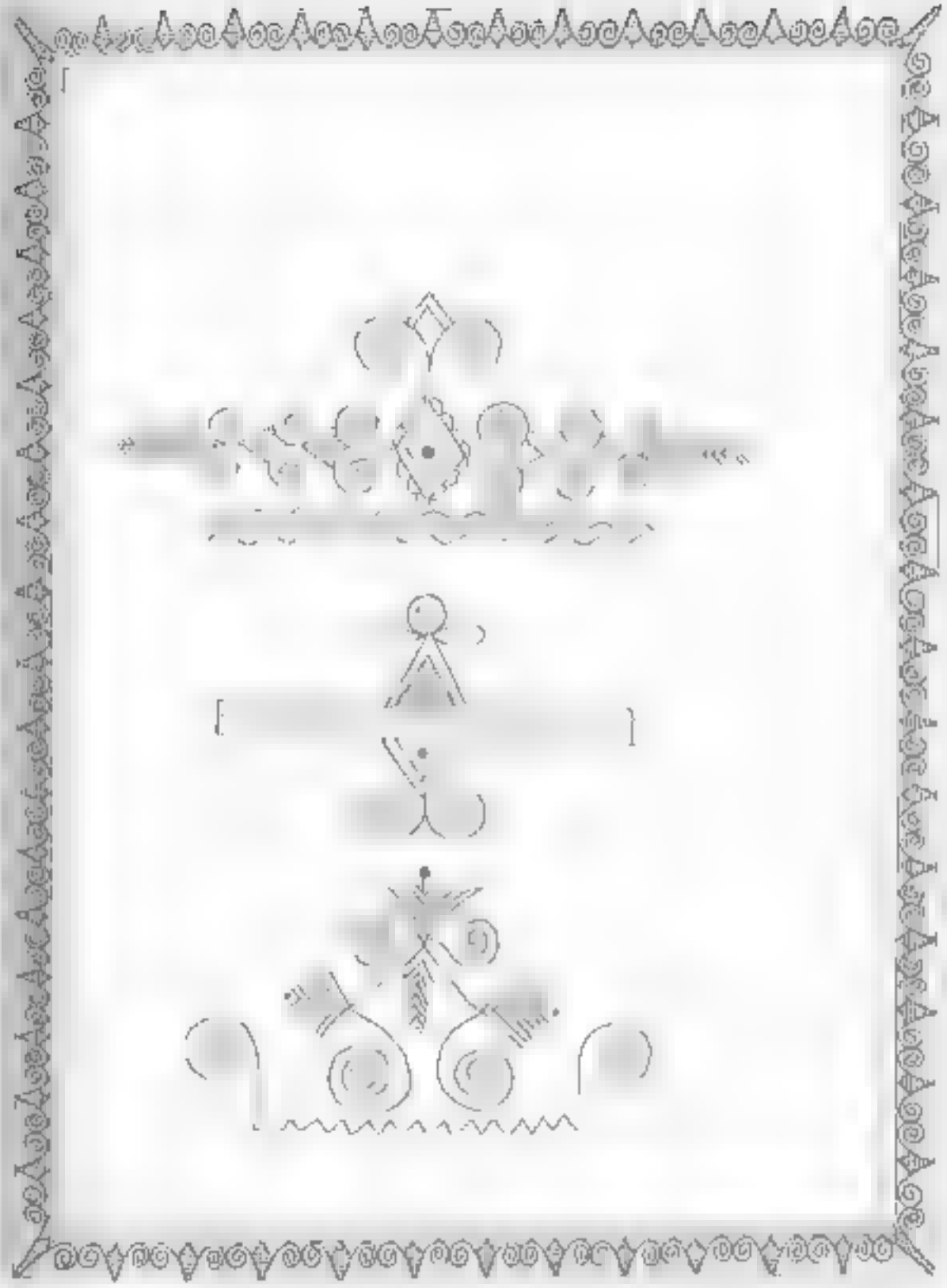

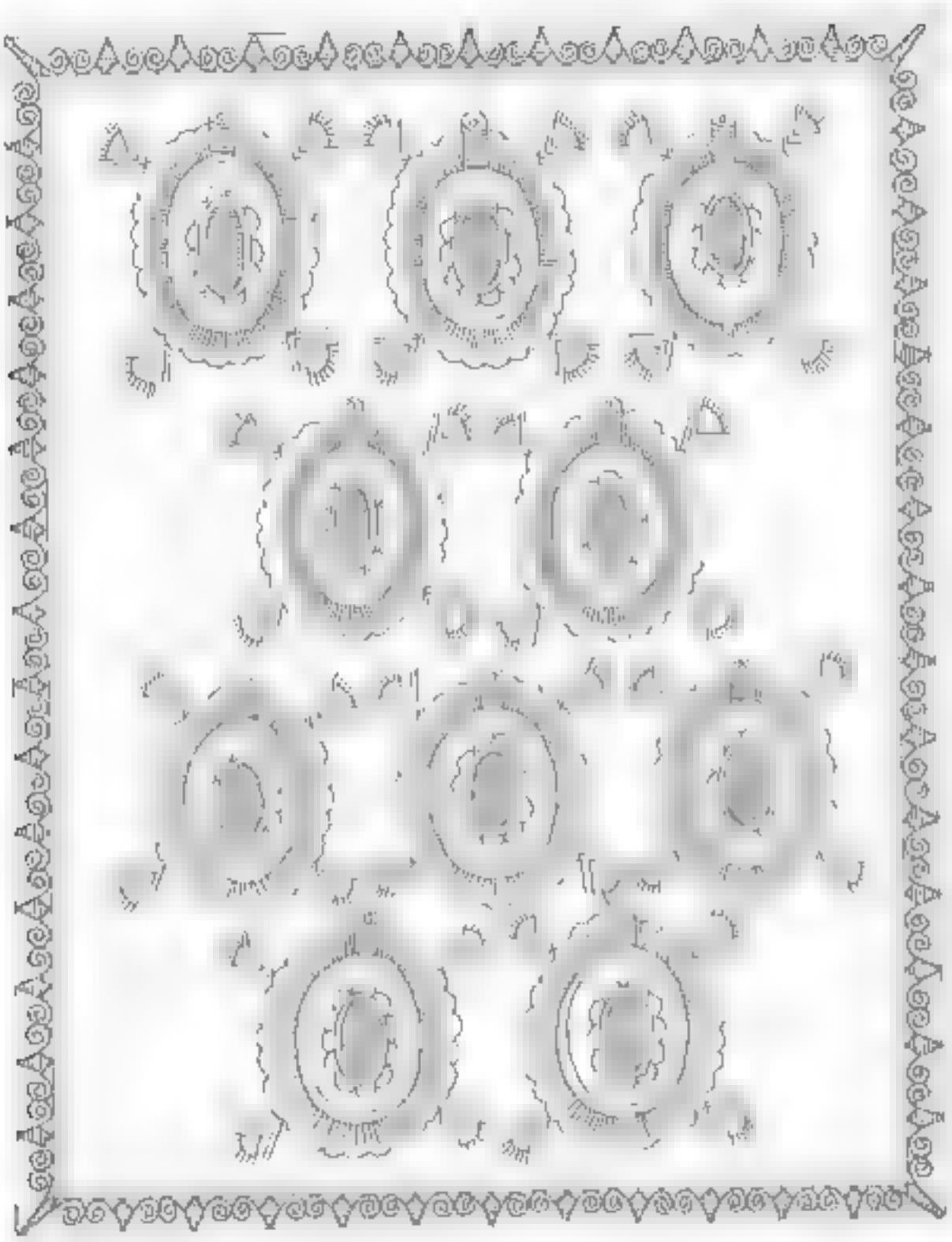

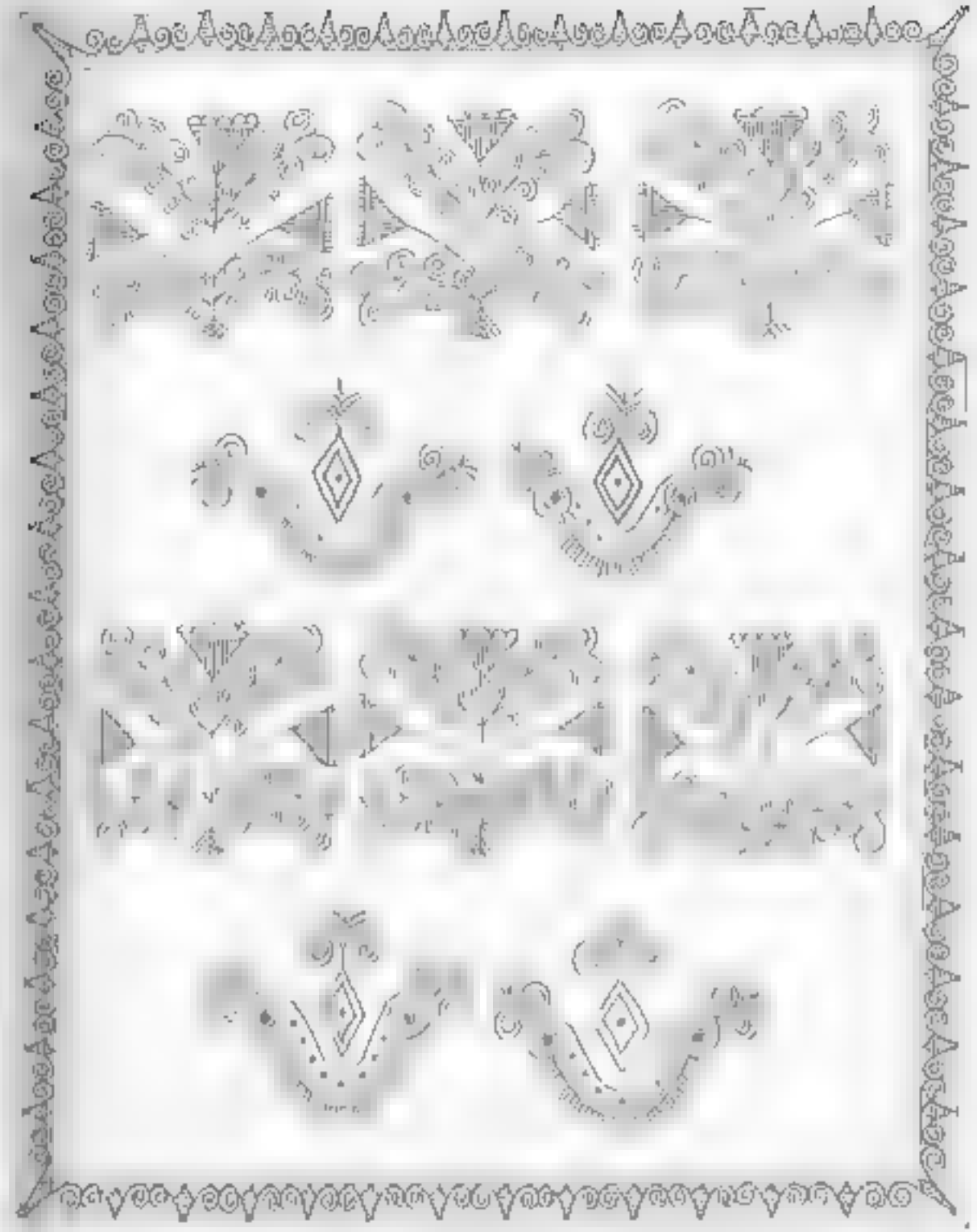

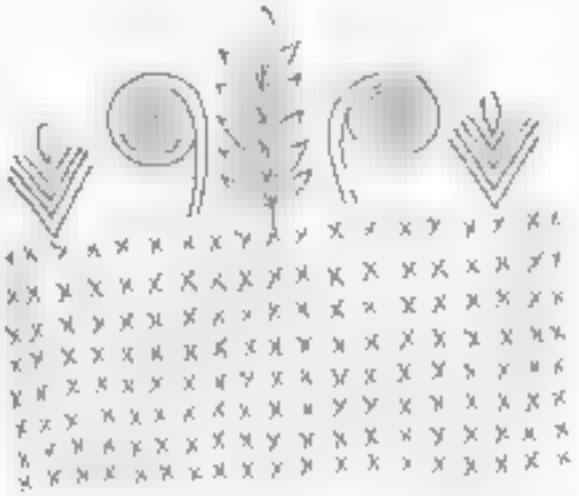

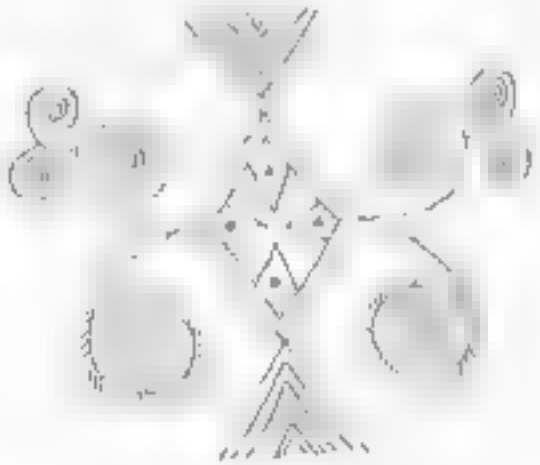

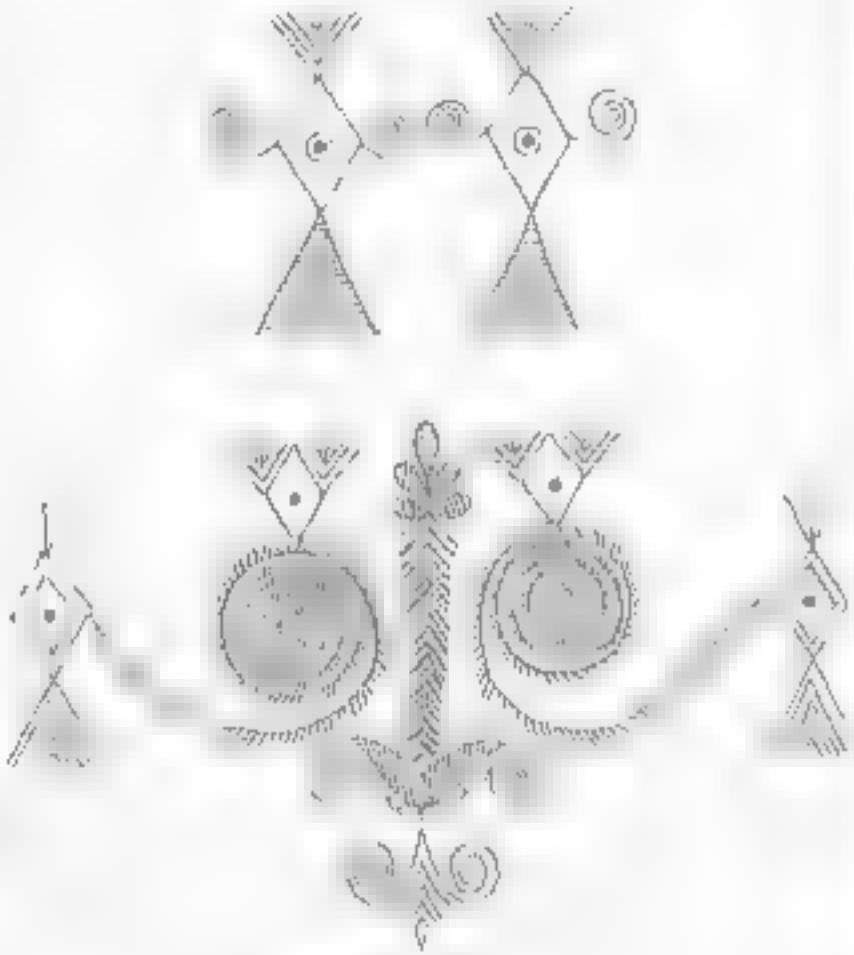

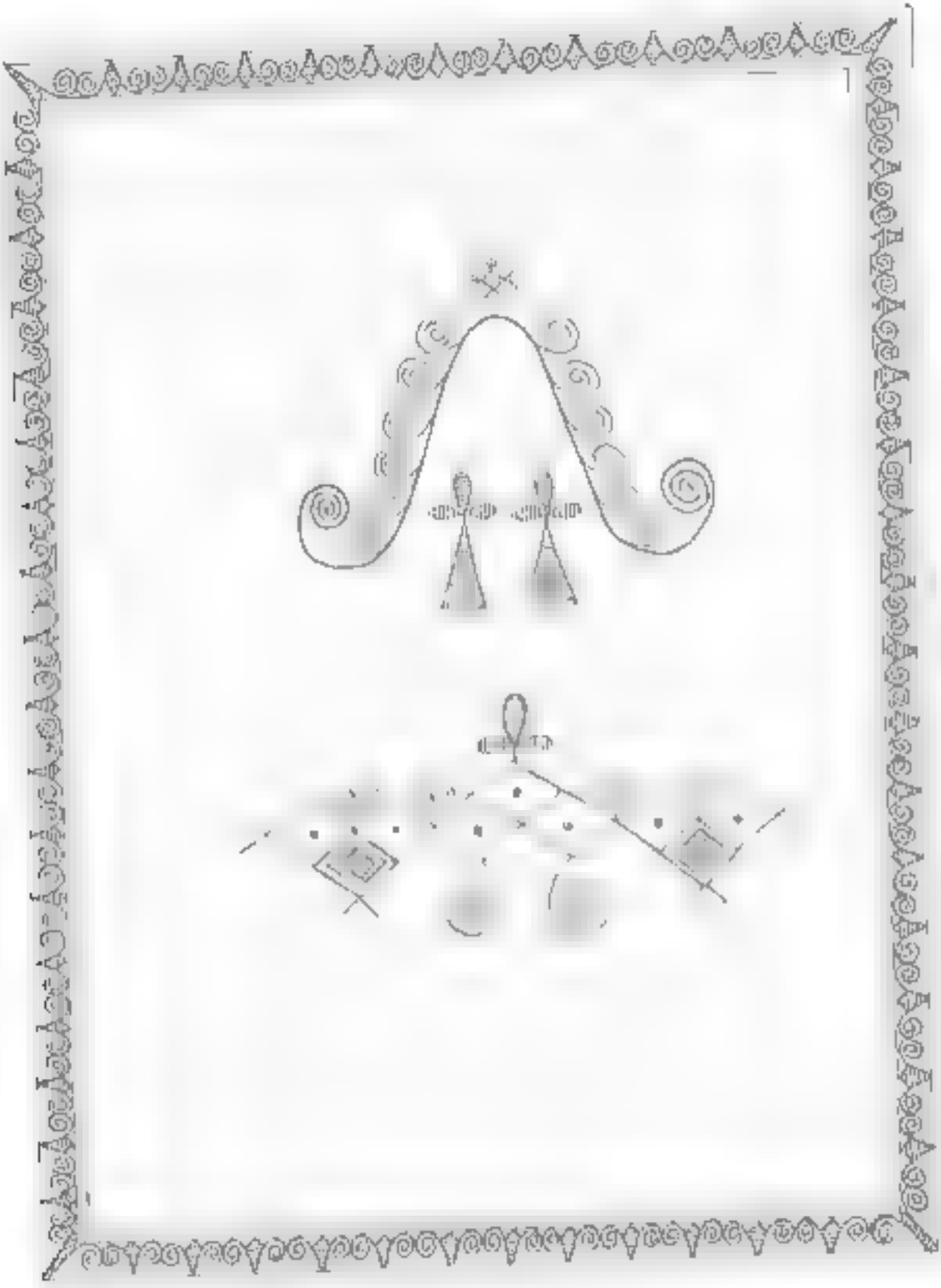

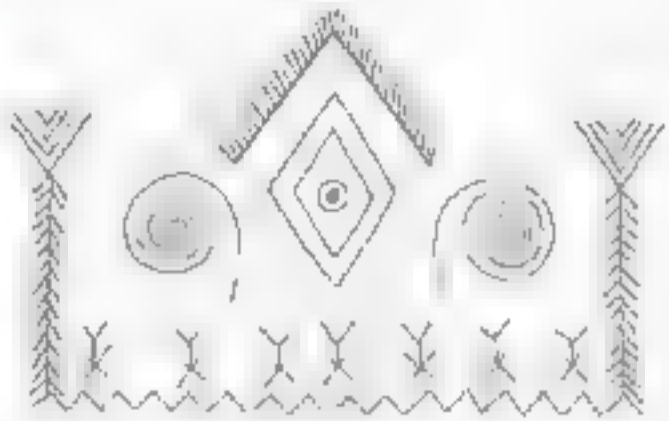

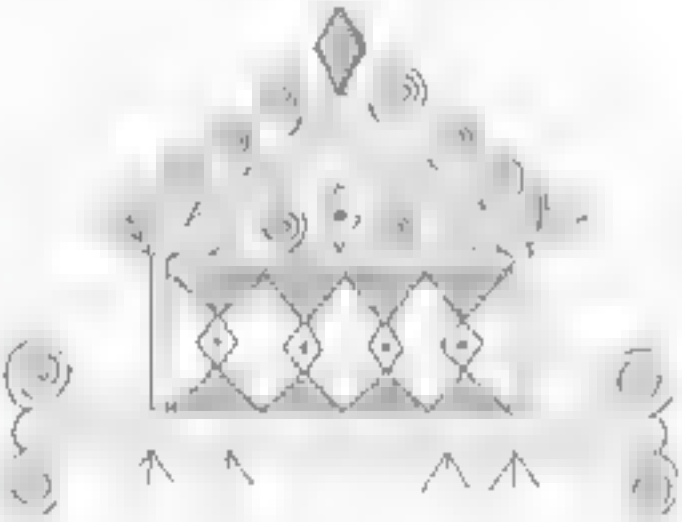

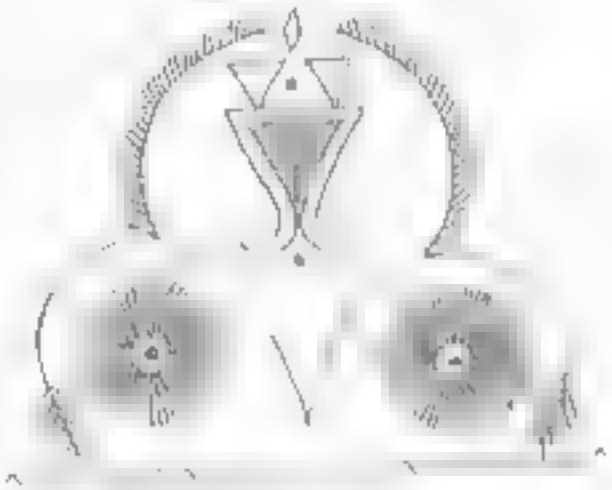

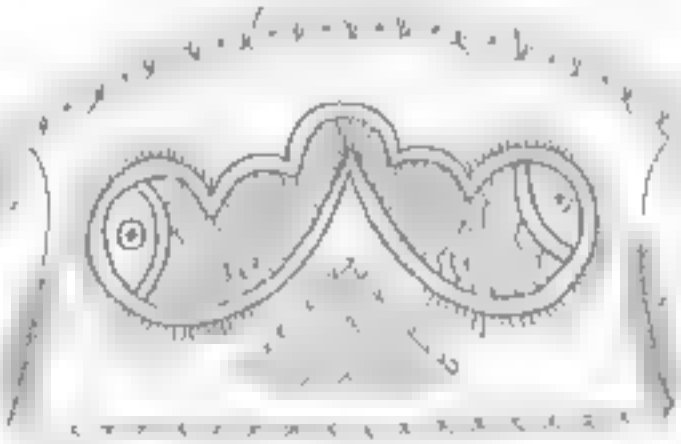

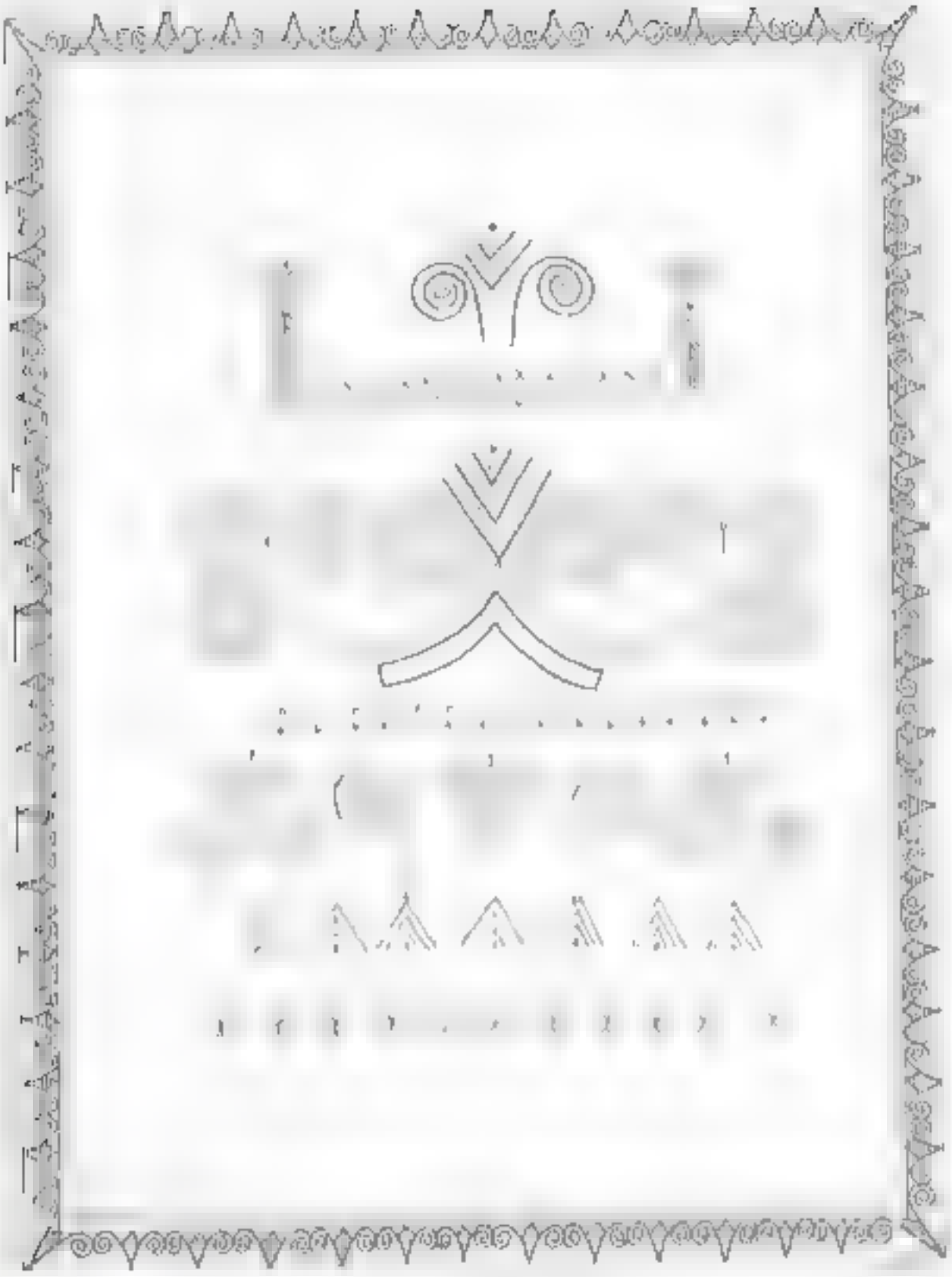

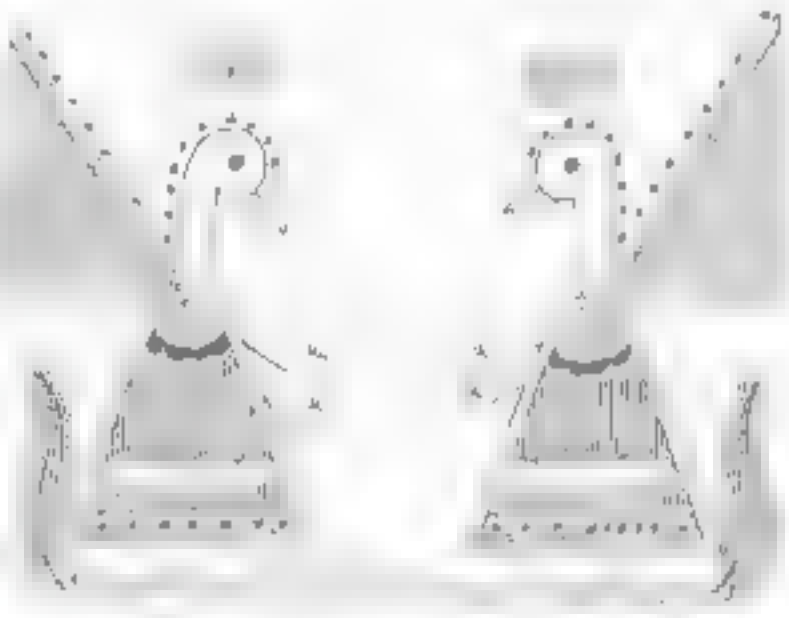

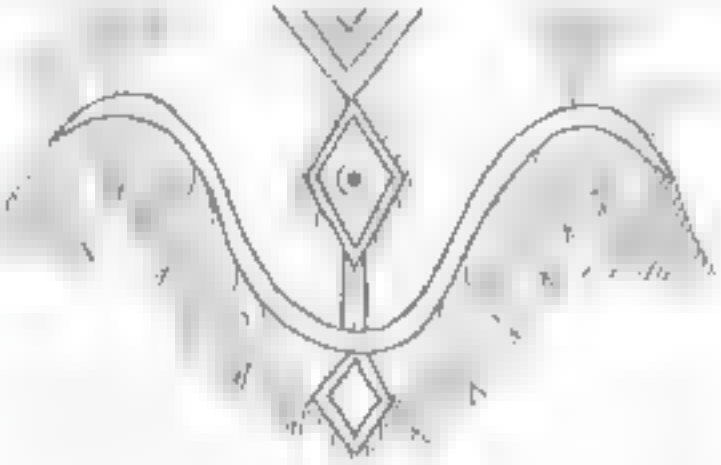

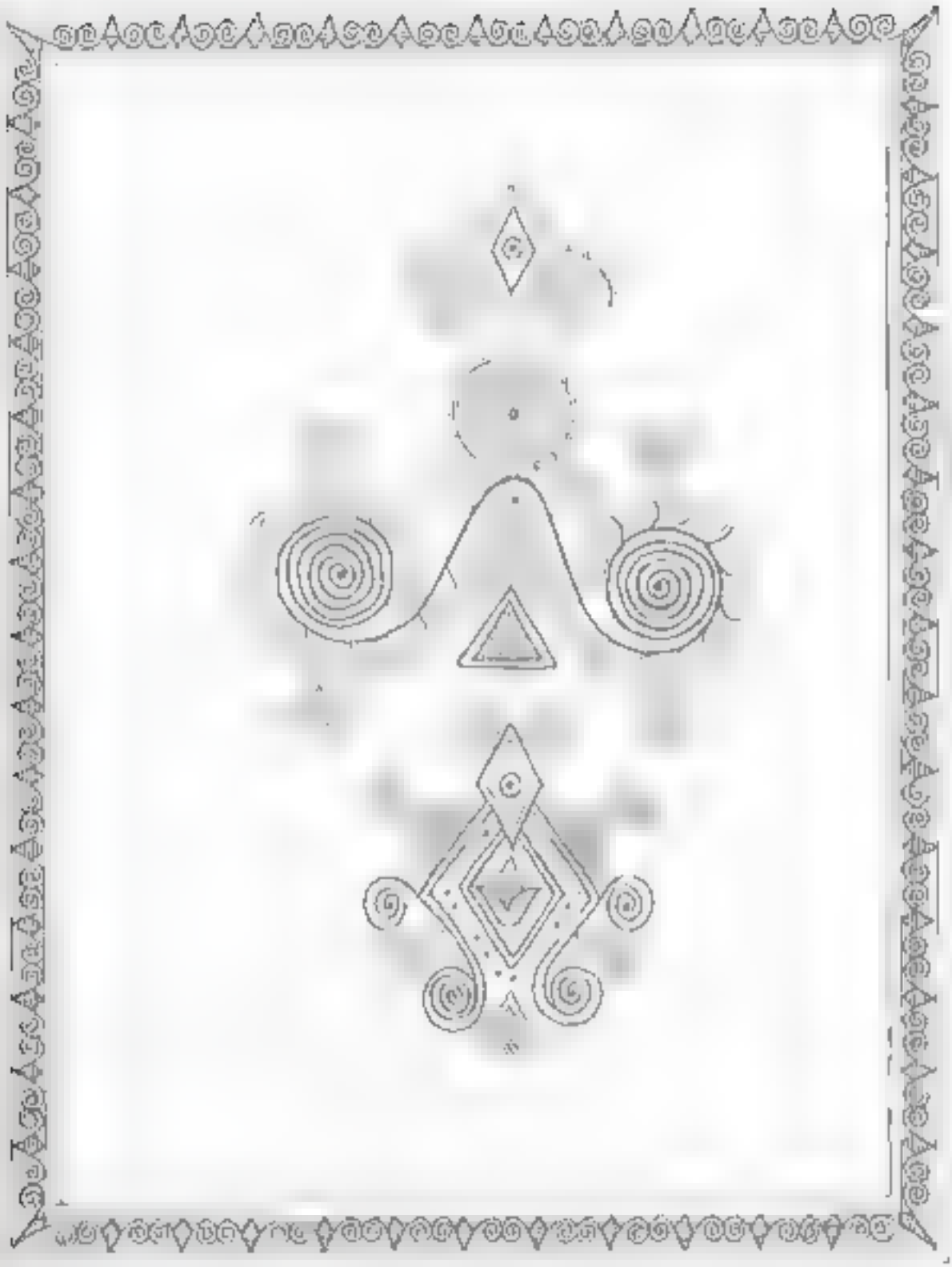

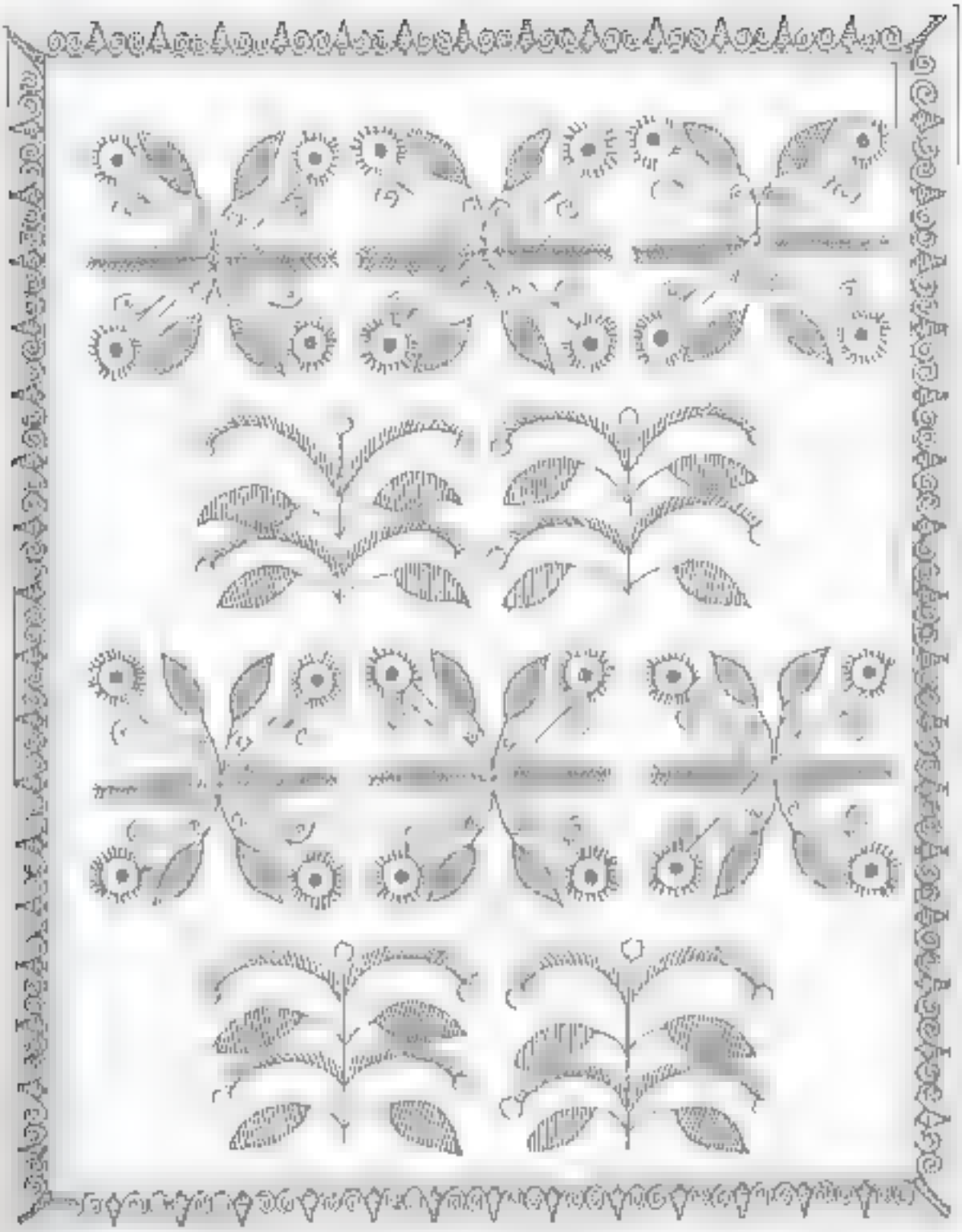

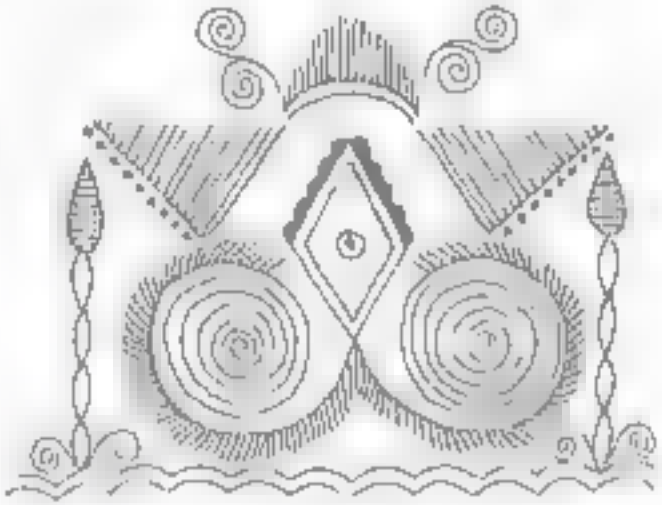

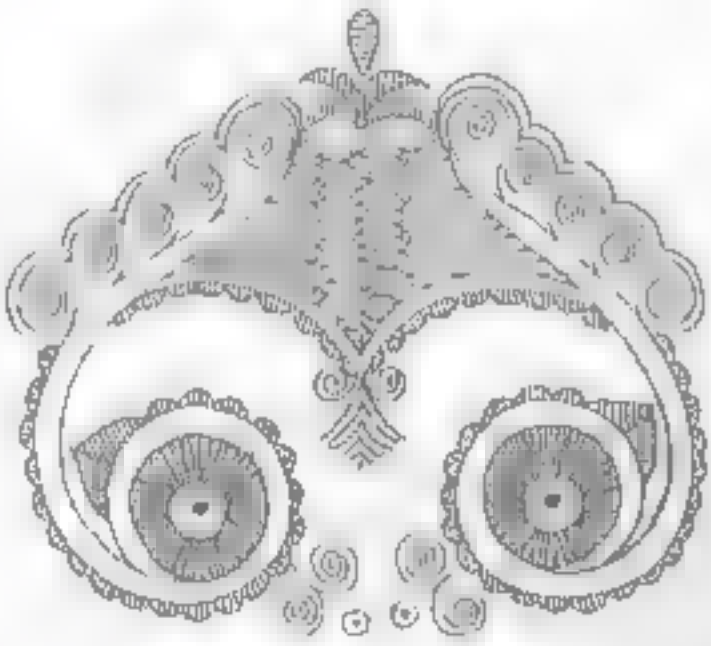

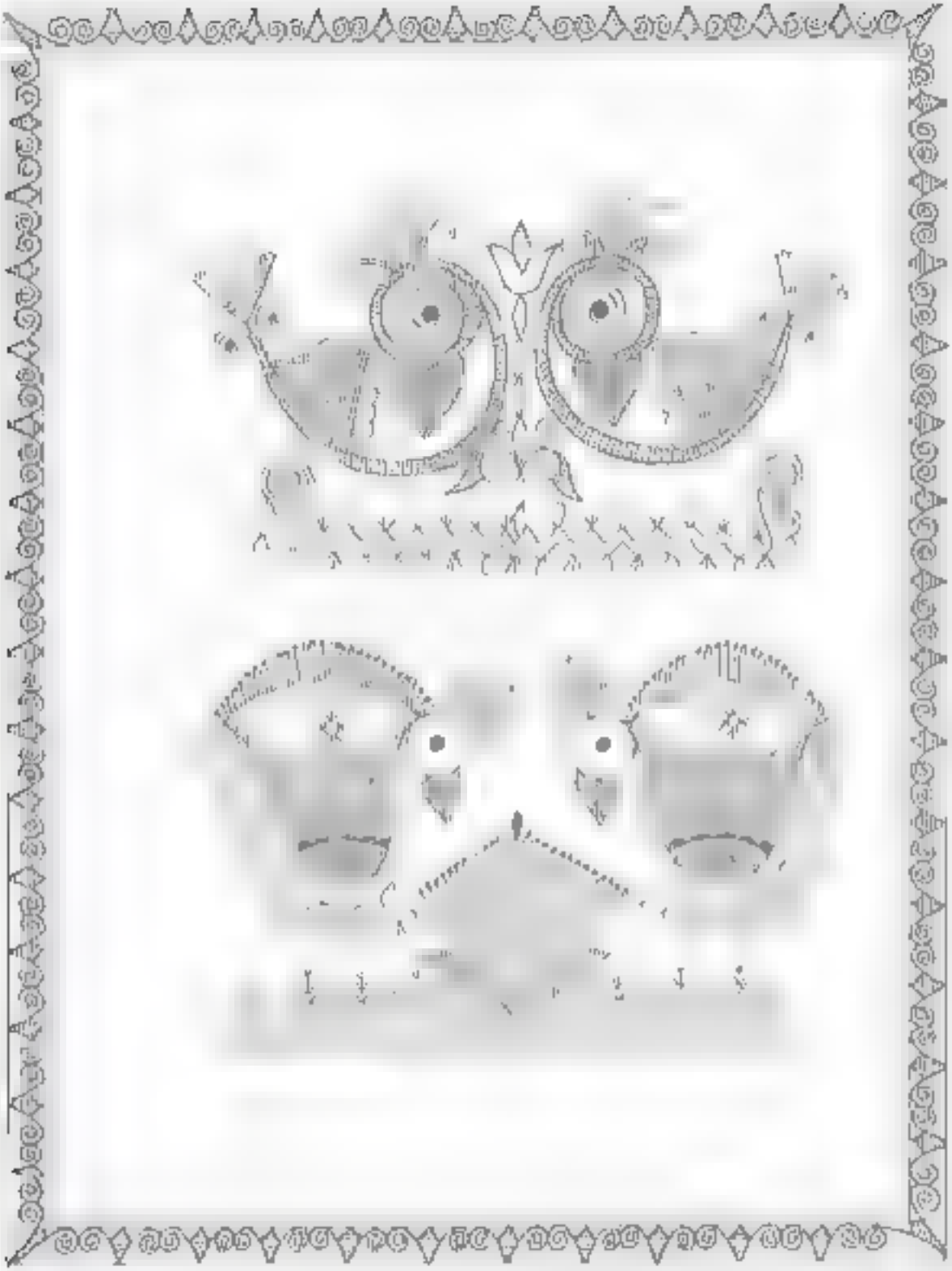

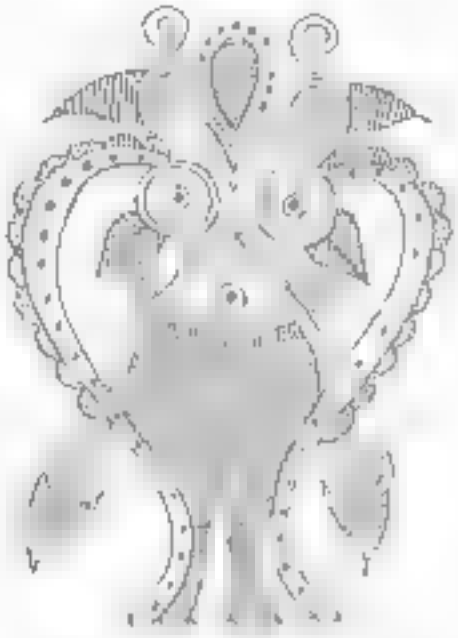

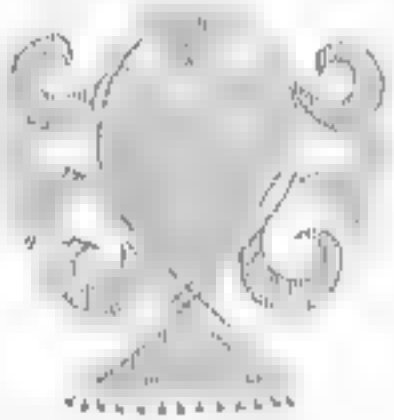

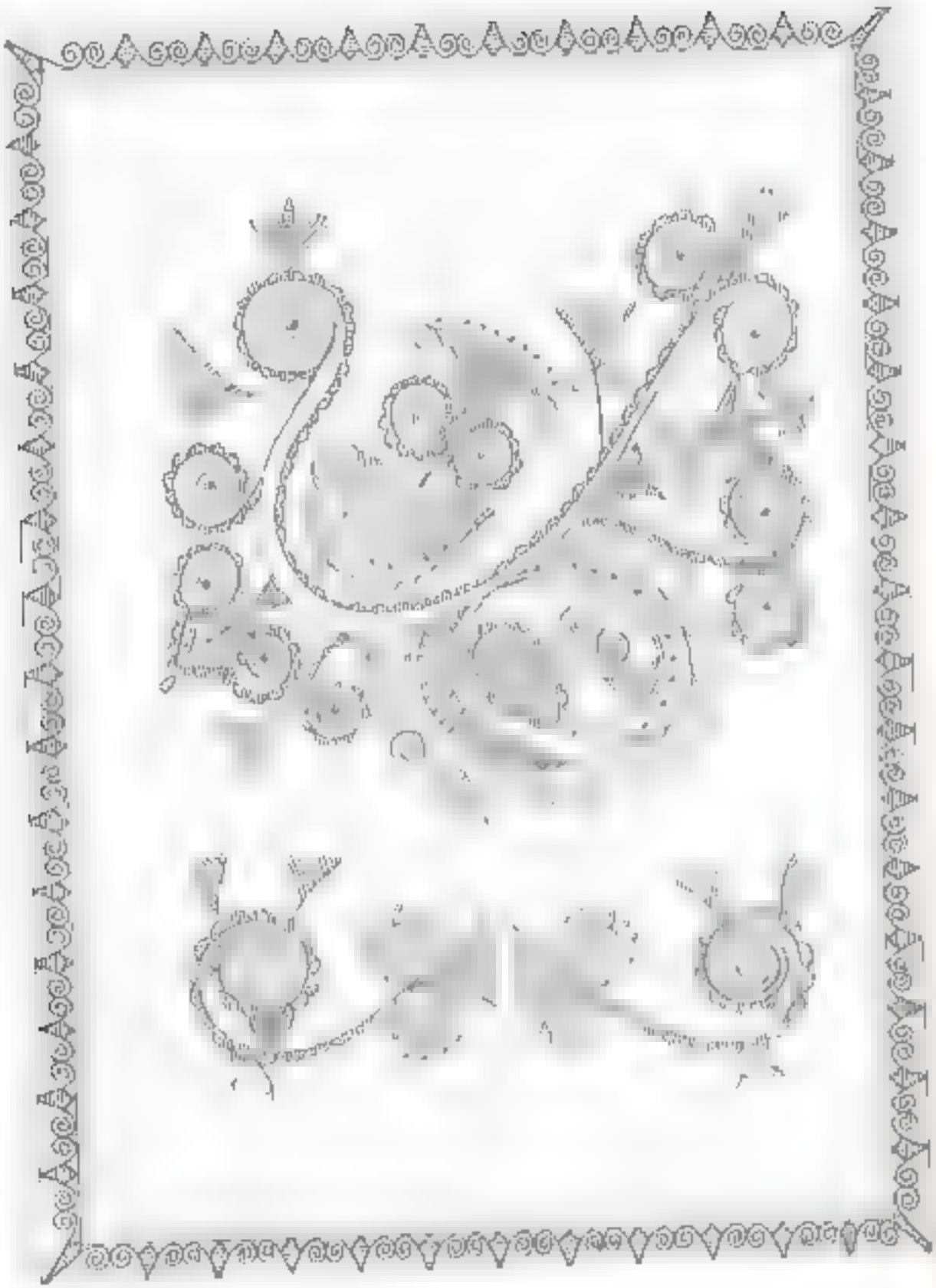

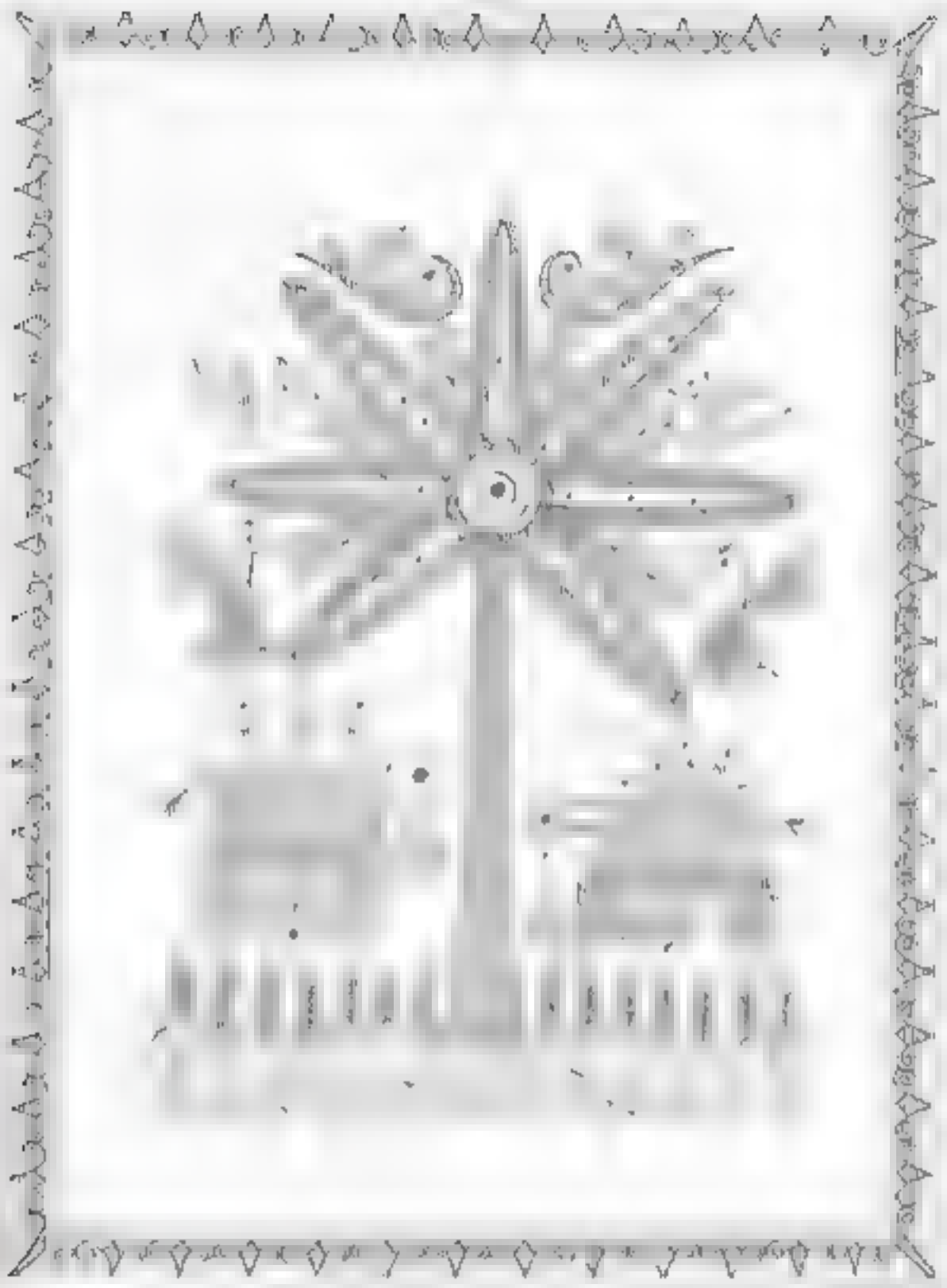

गोदना कोर

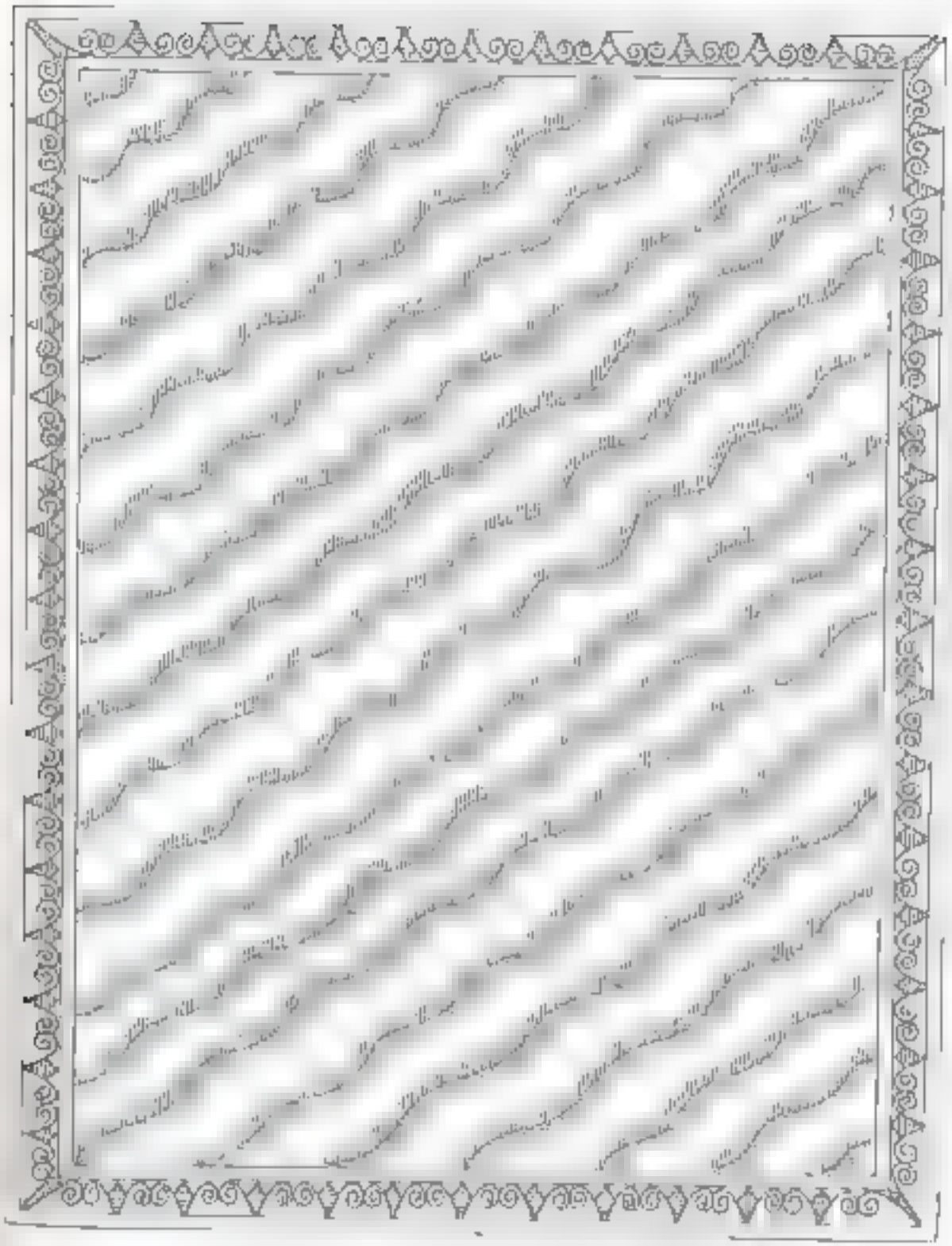

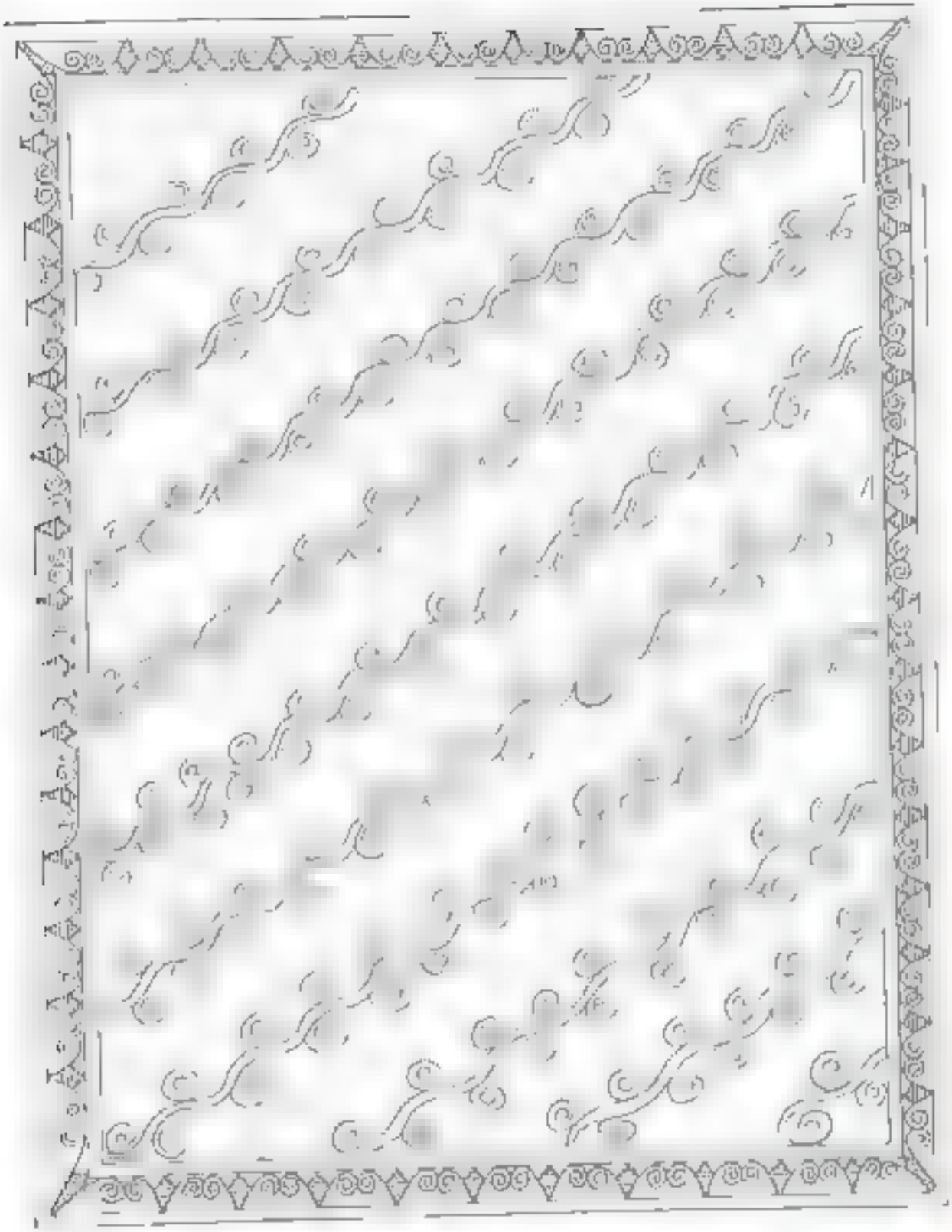

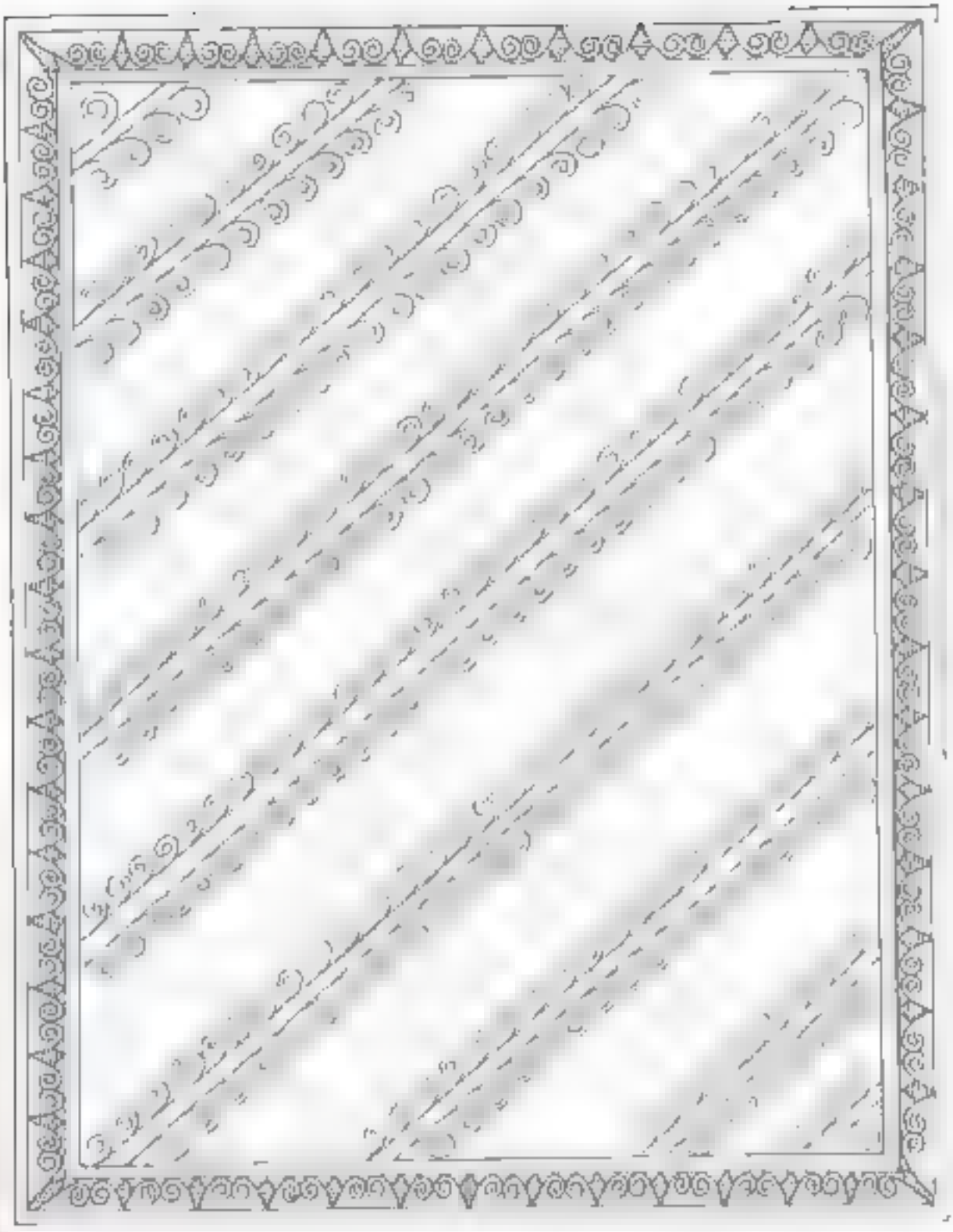

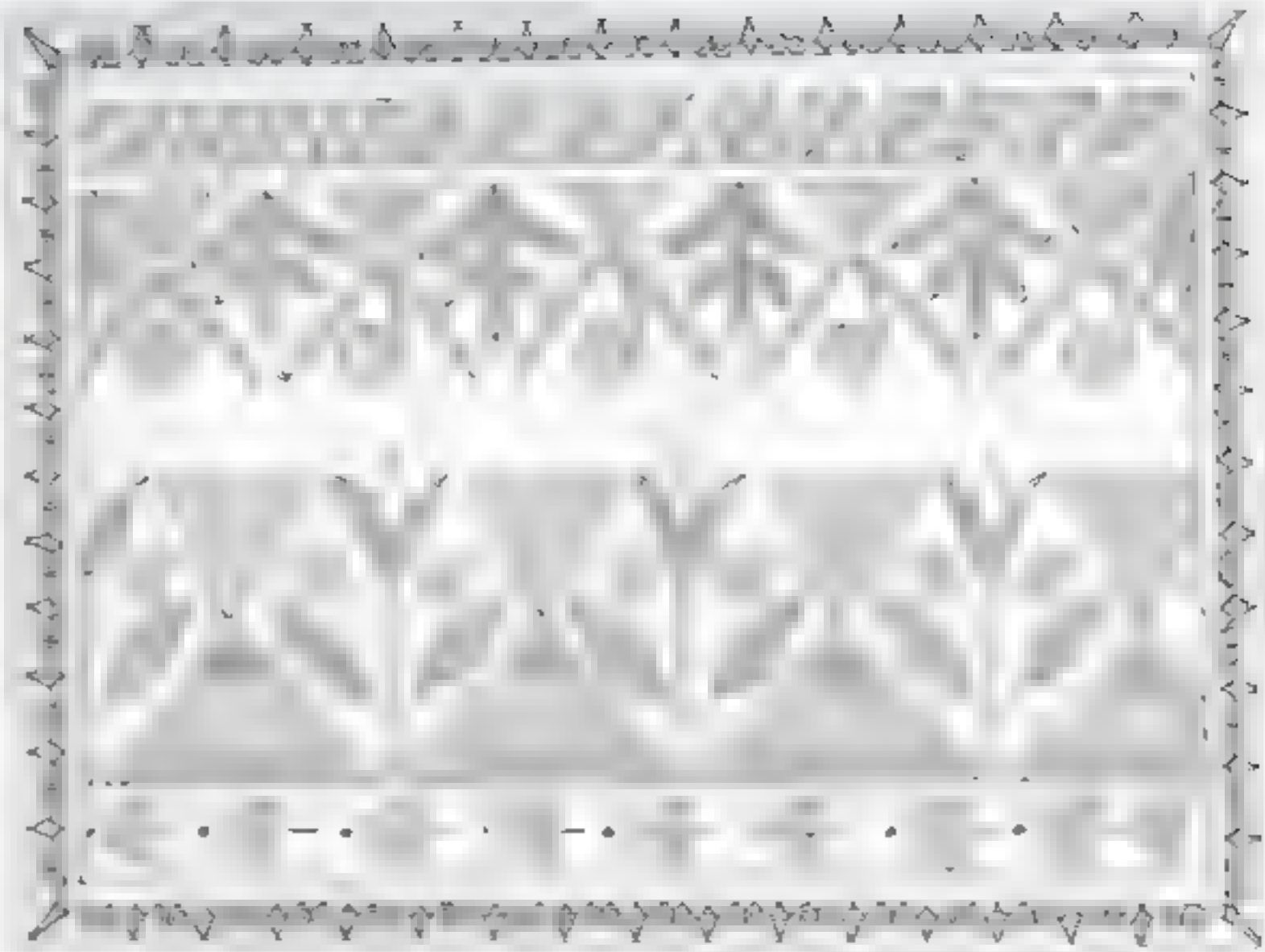

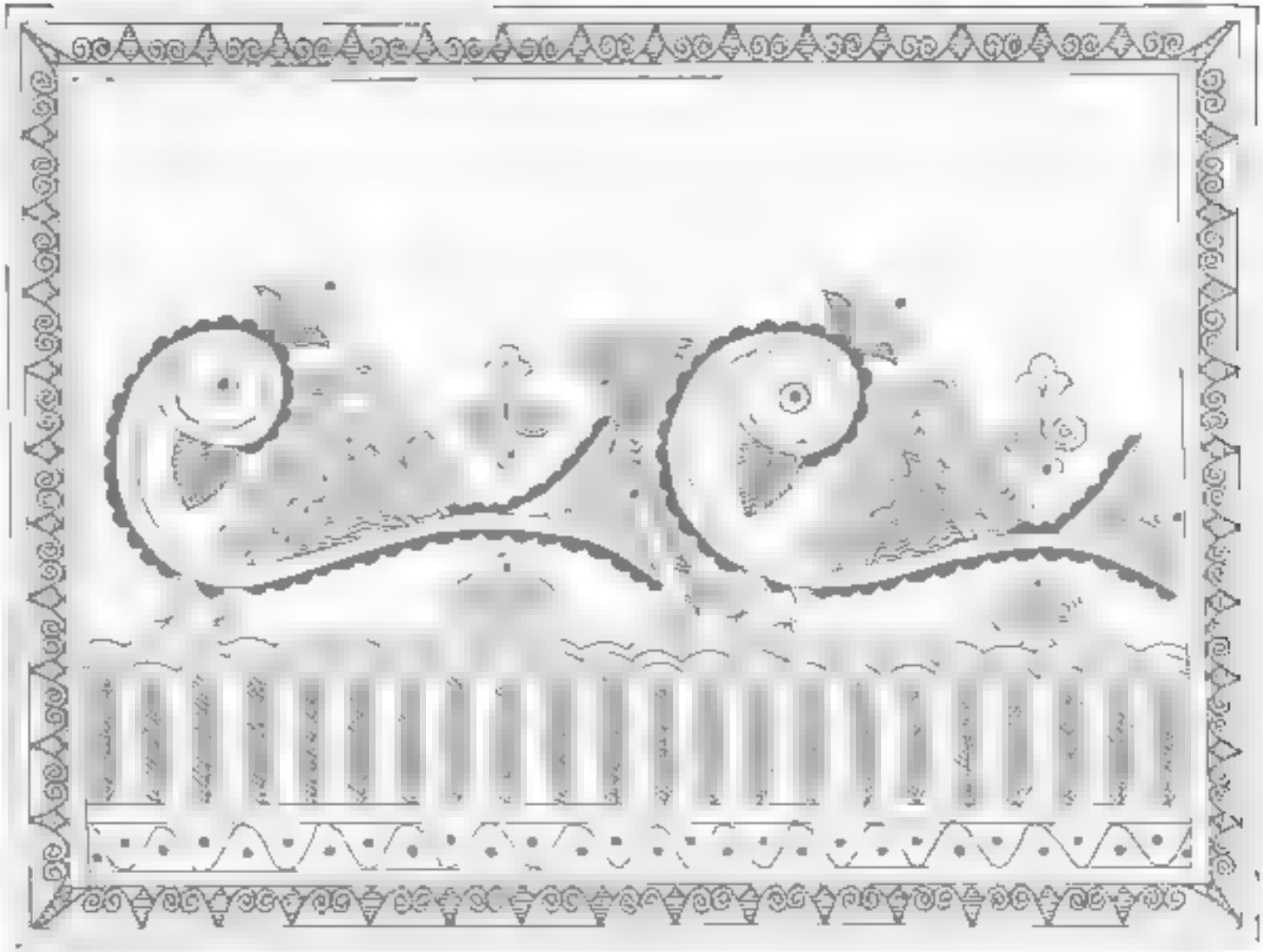

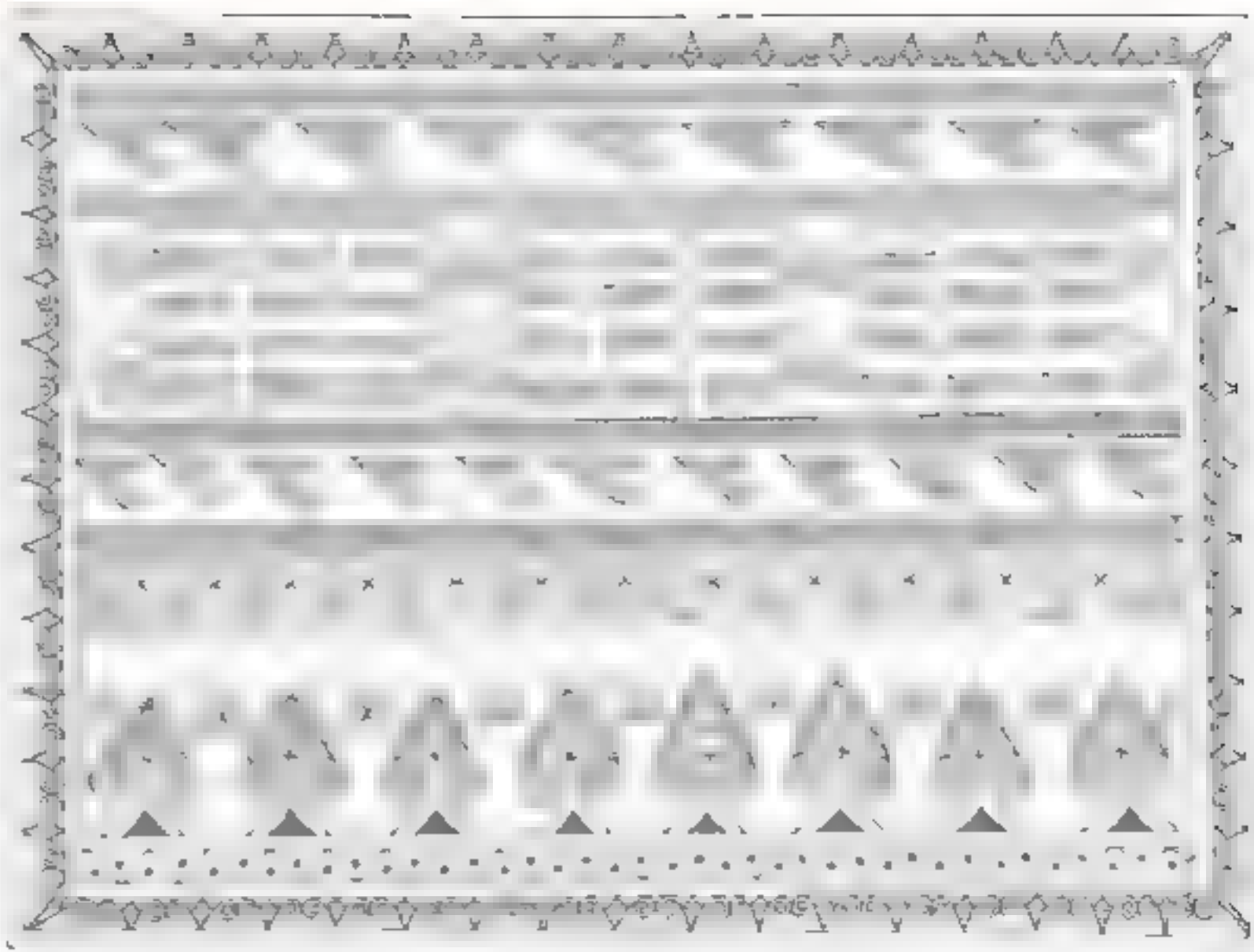

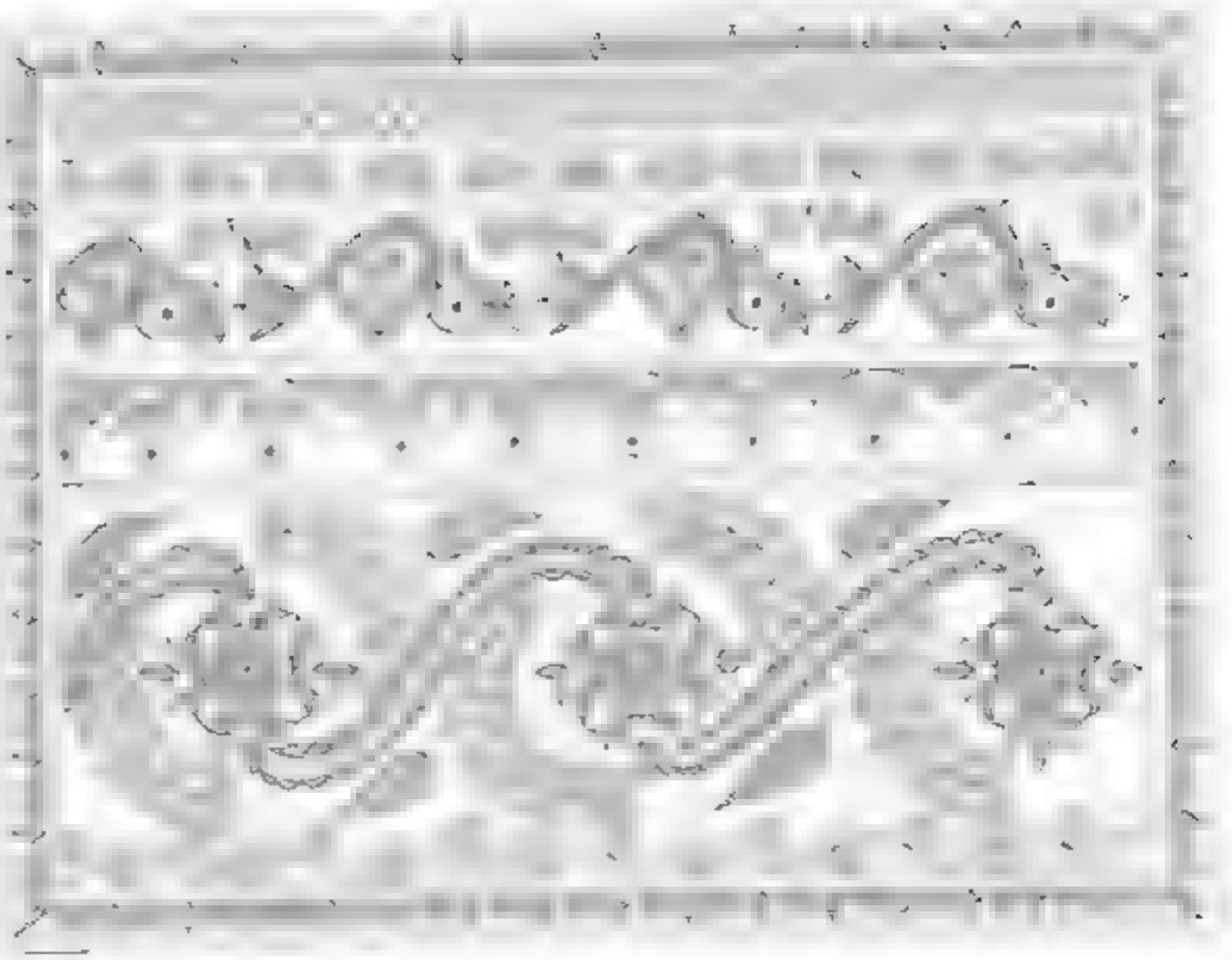

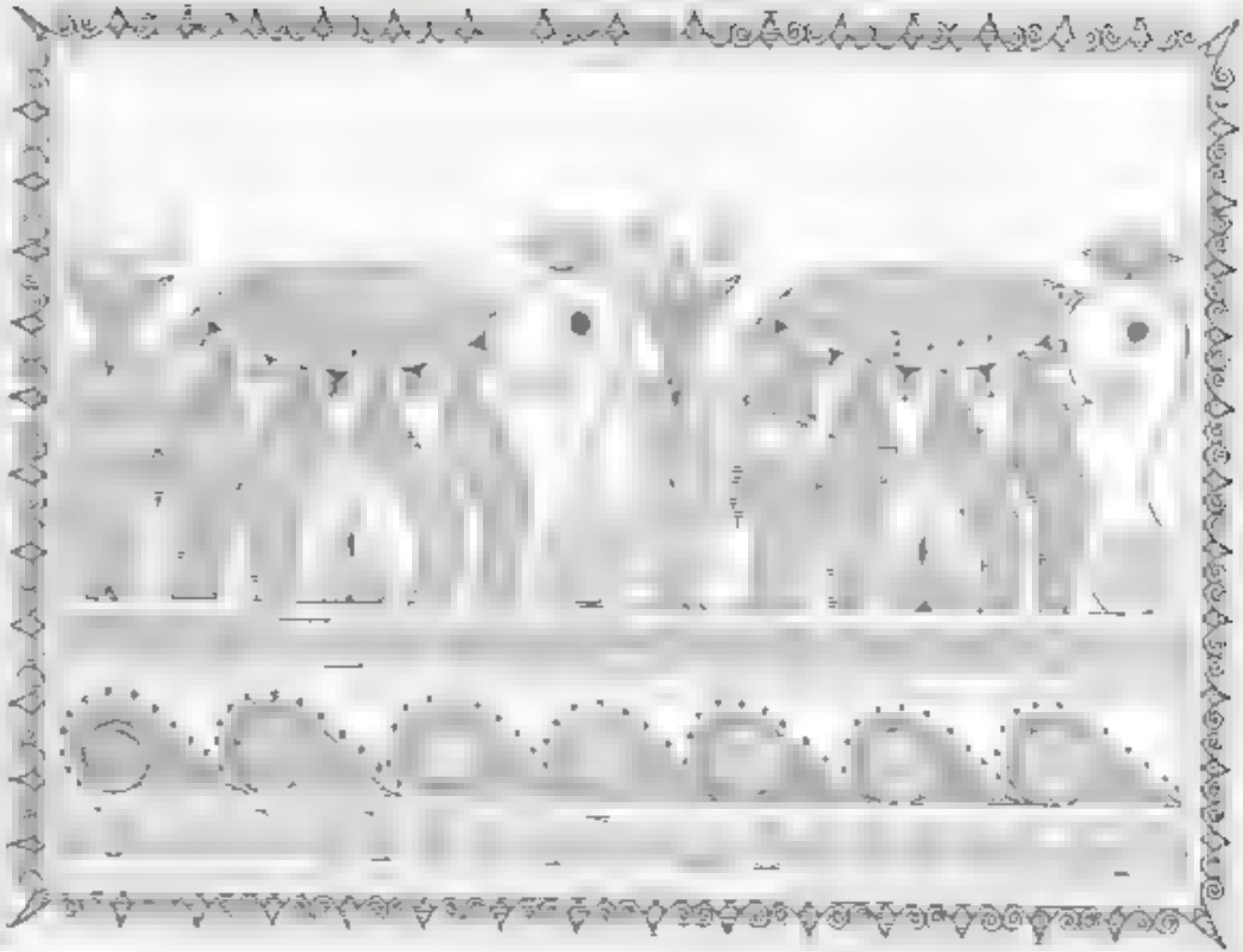

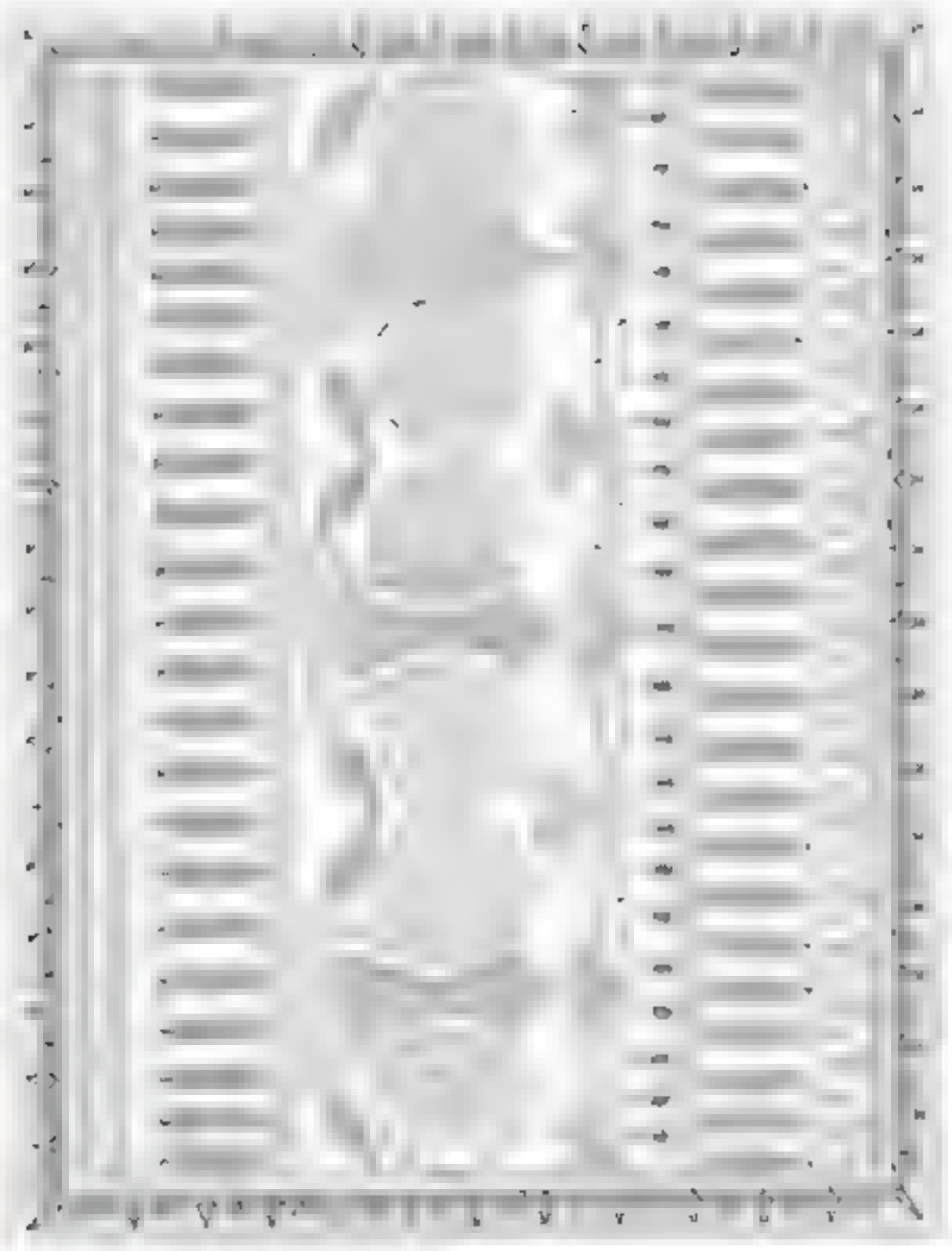

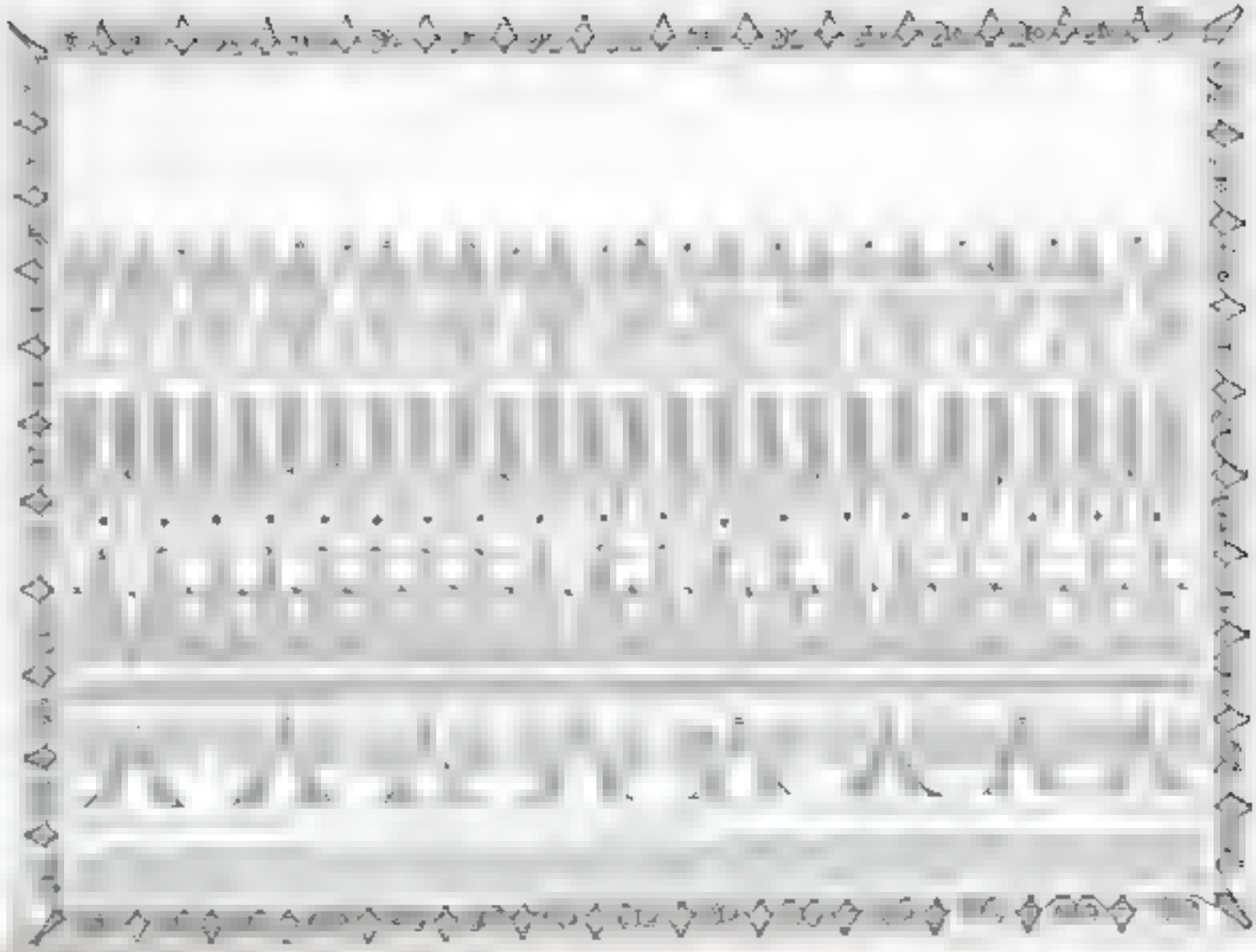

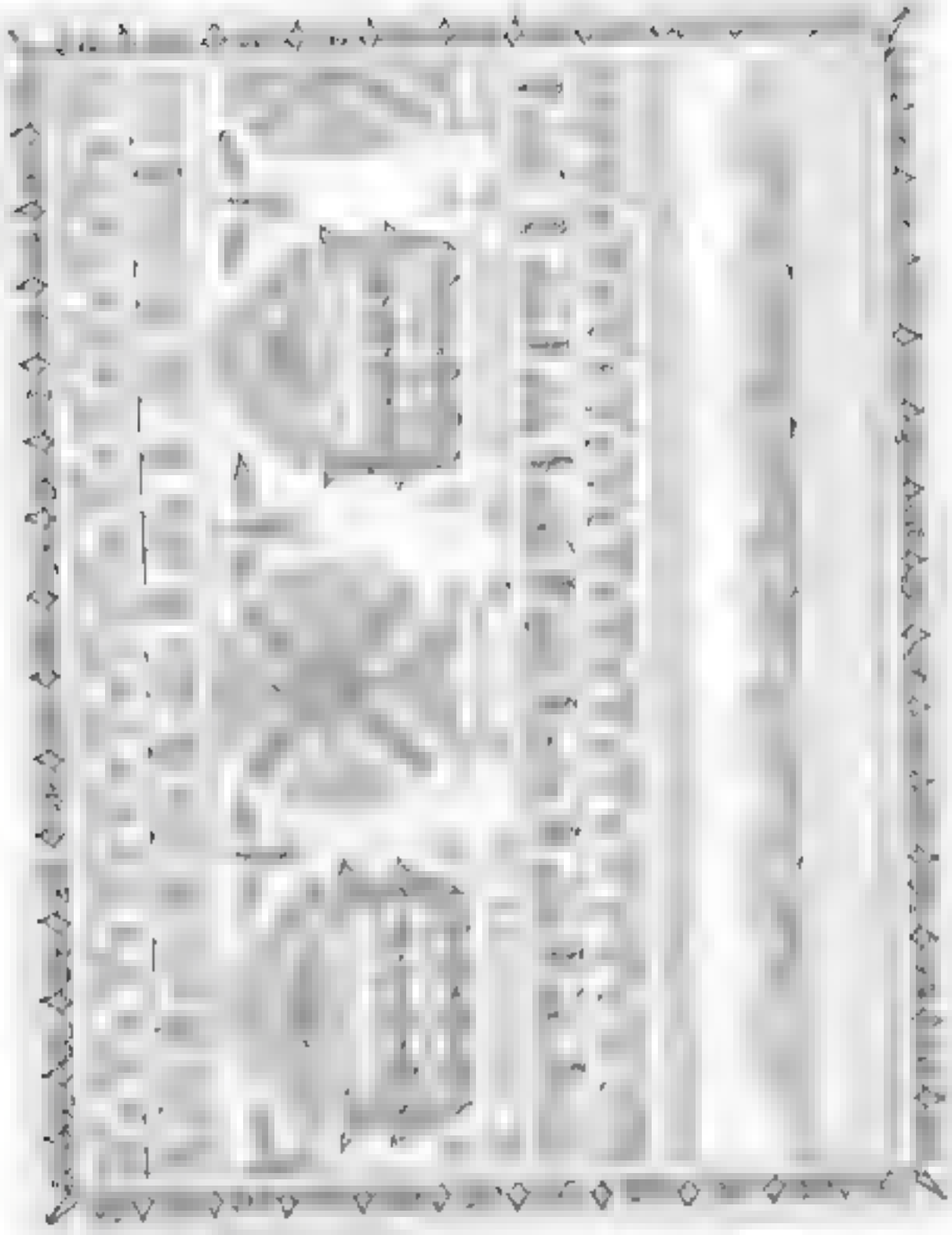

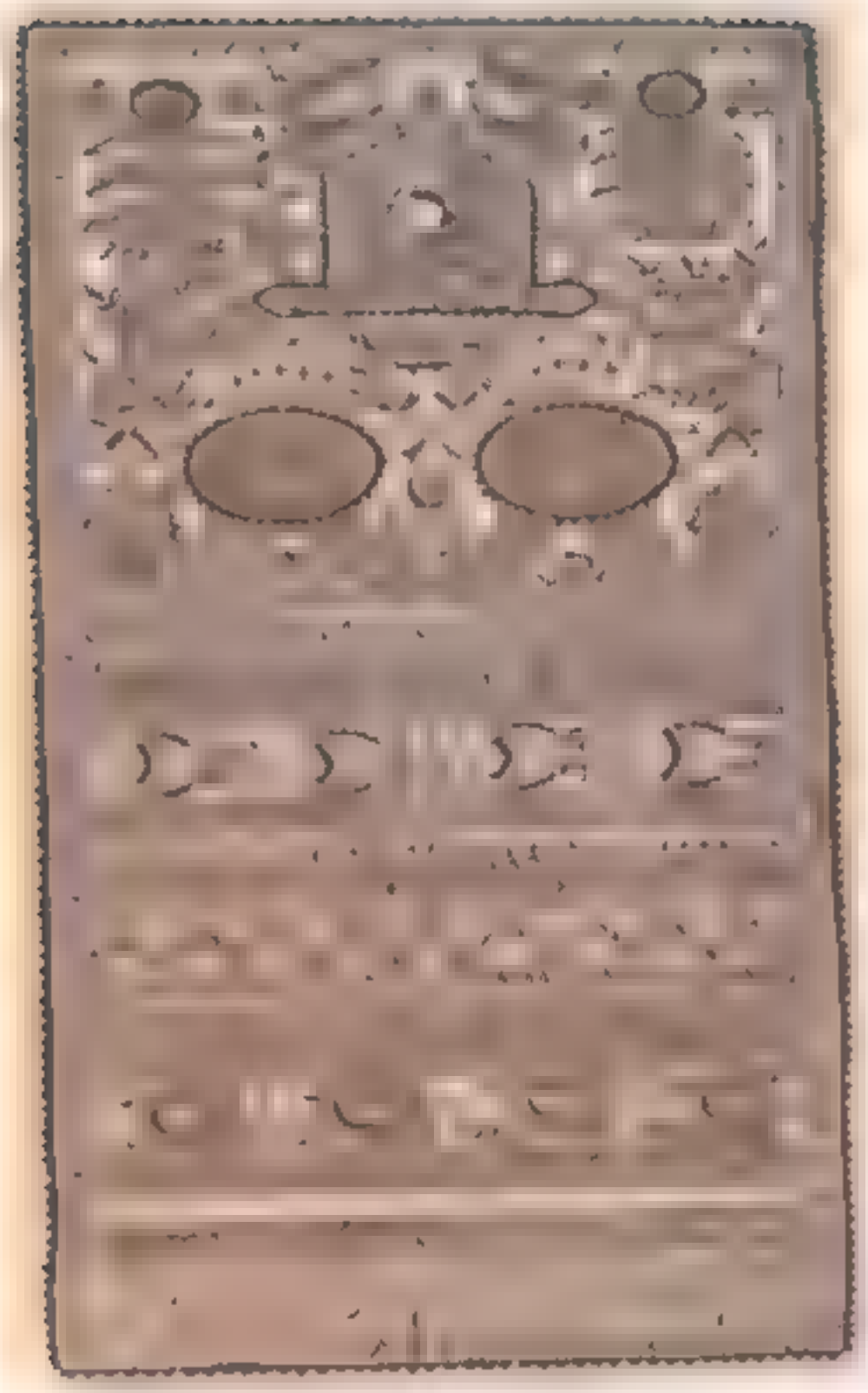

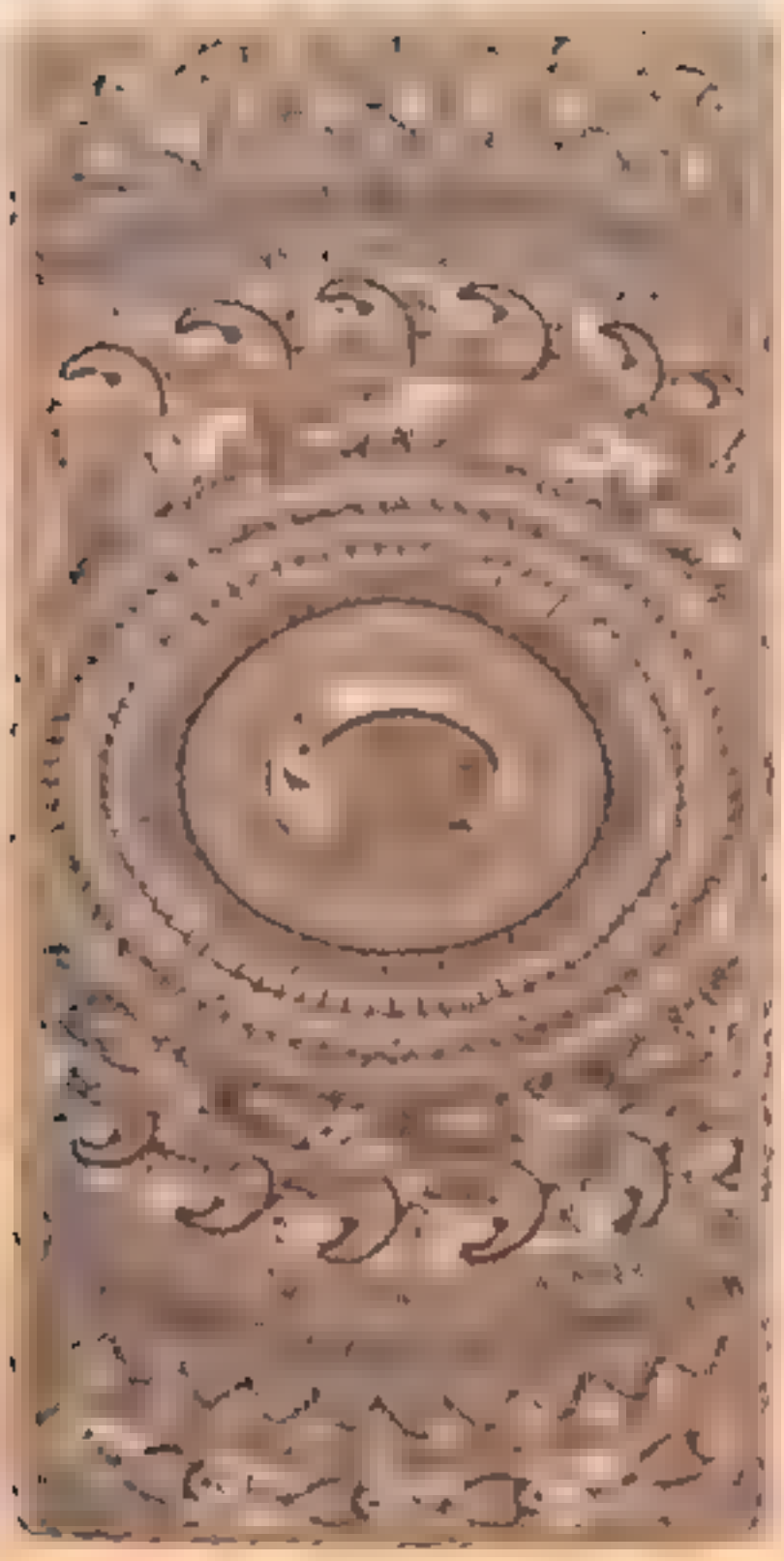

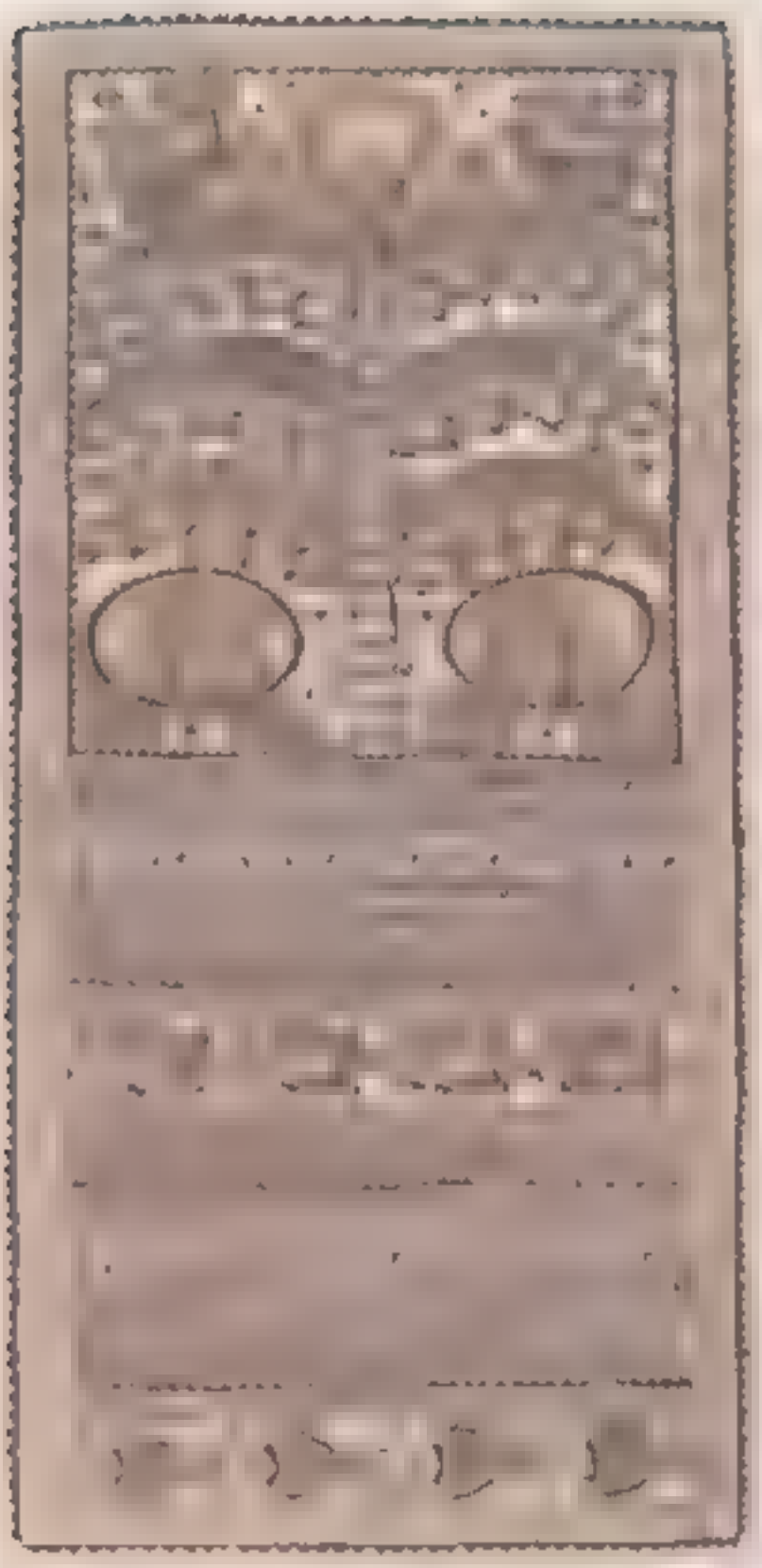

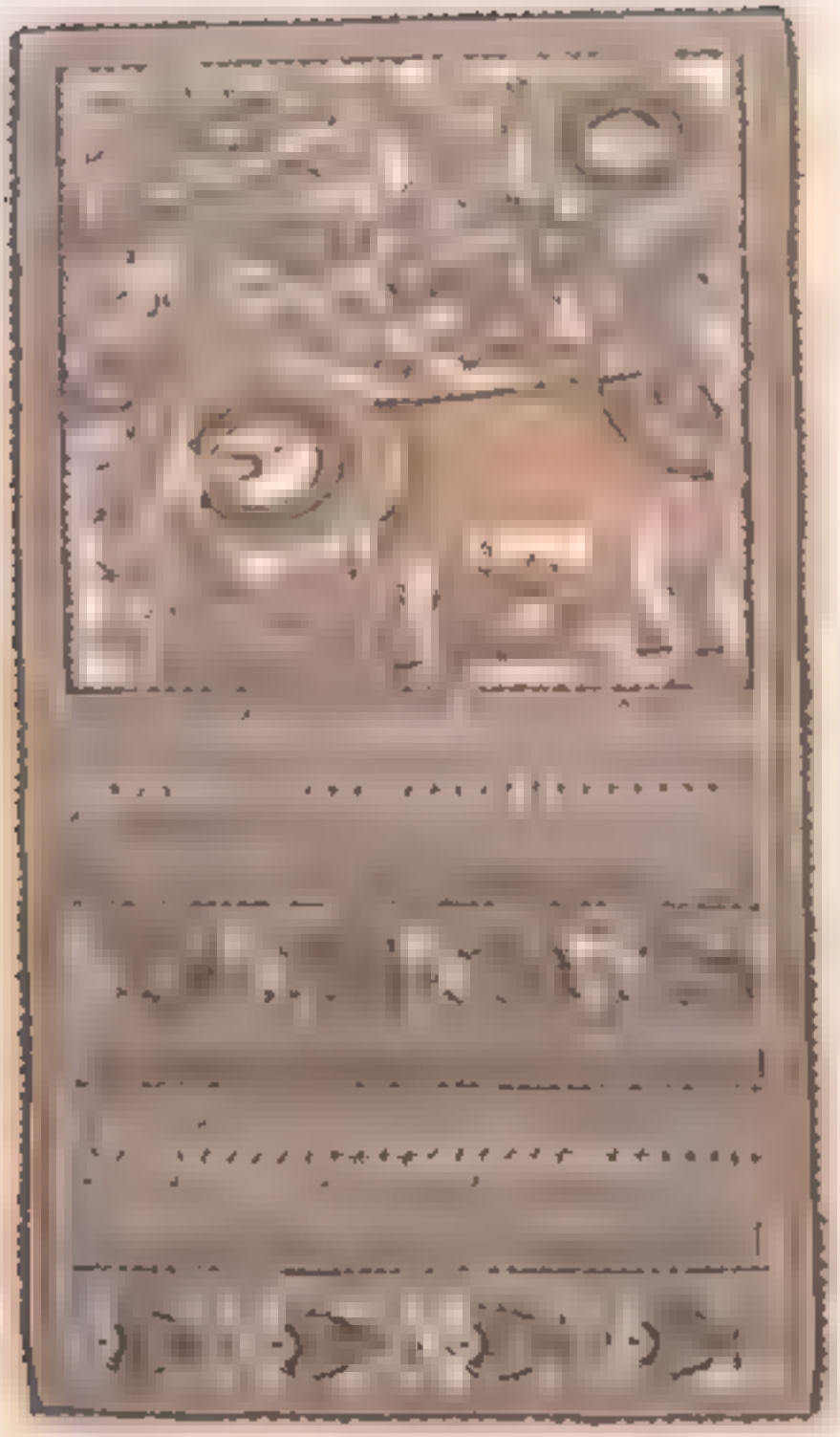

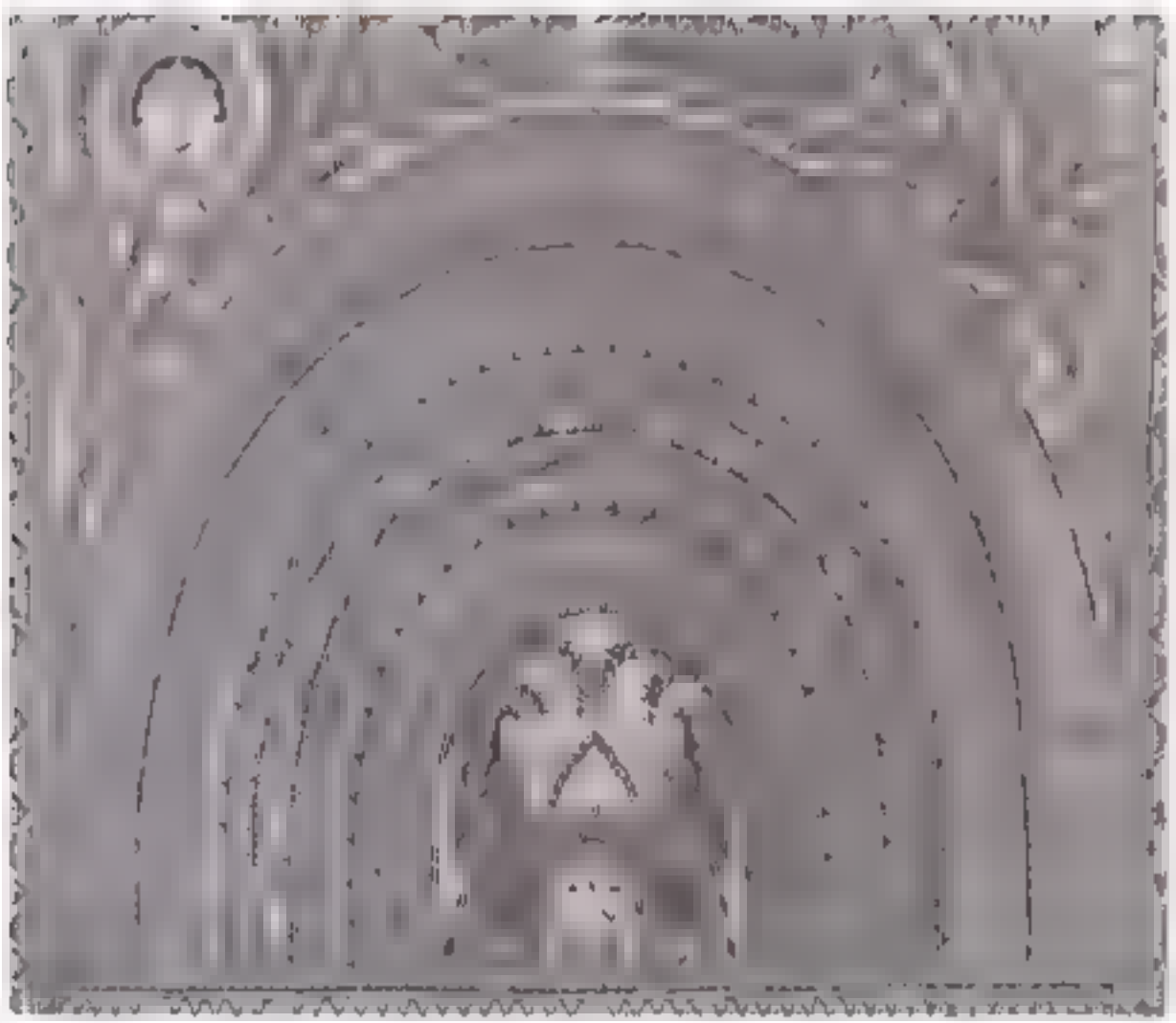

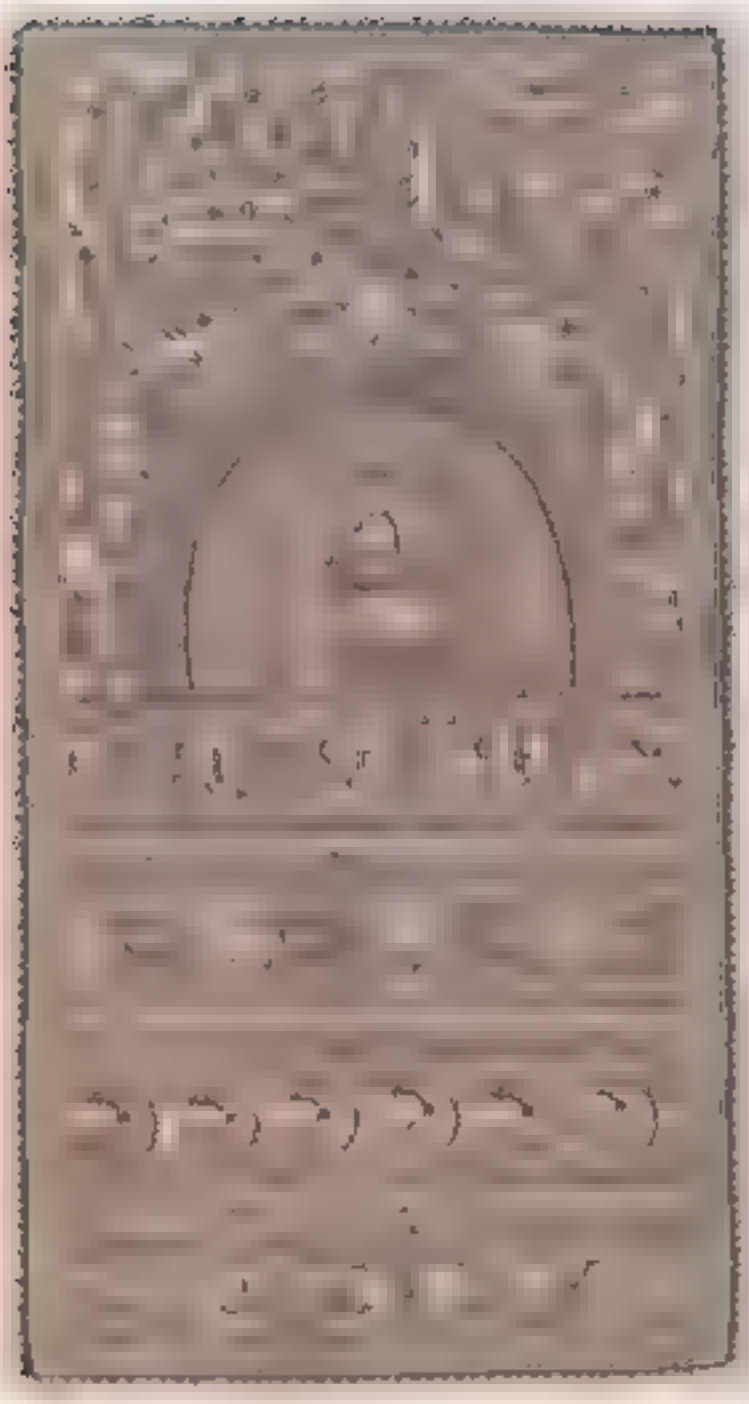

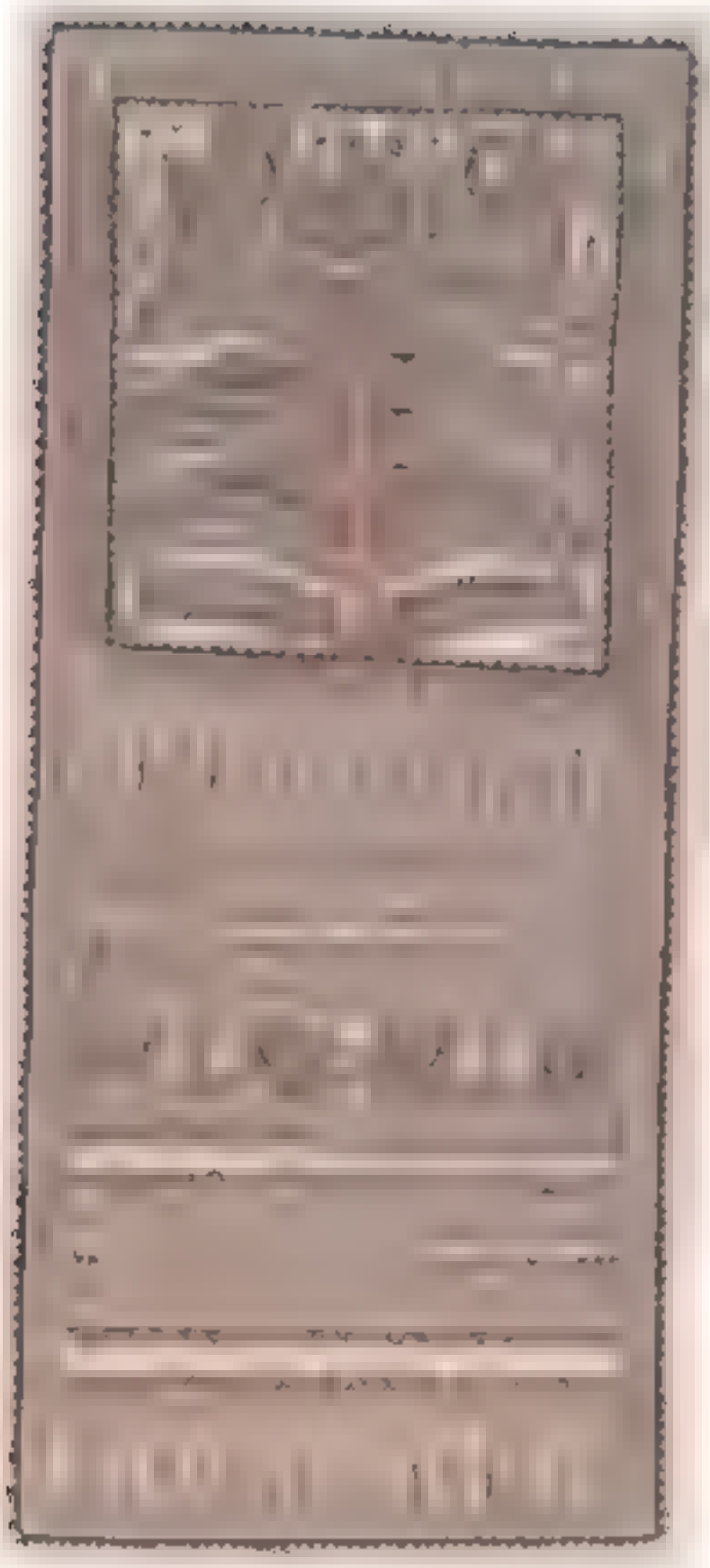

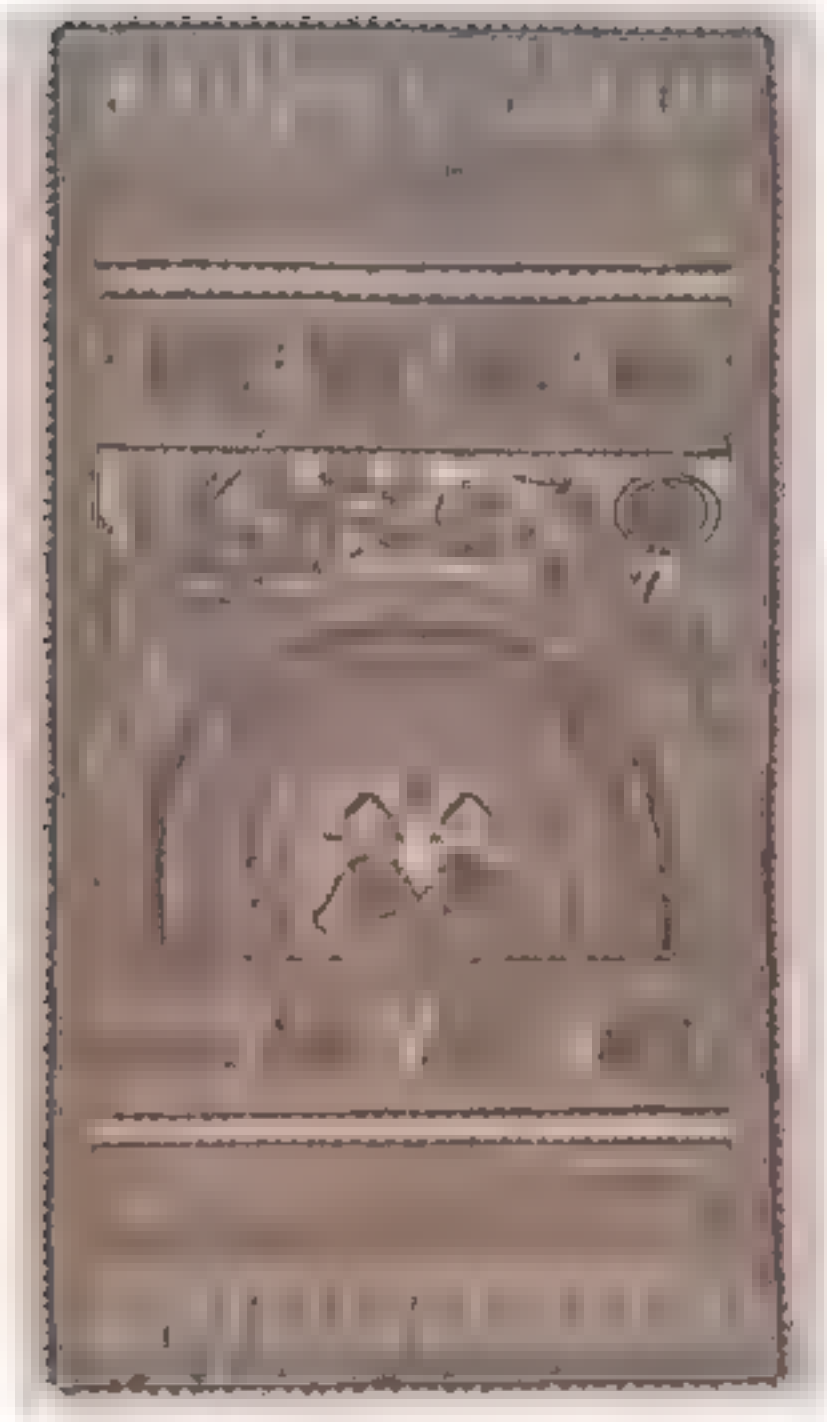

सन्दर्भ–ग्रन्थ, अन्य स्रोत एवं फोटोग्राफ्स

1 Indian Folk Art – Heinz Mode
2 Primitive Peoples Today – Edward Weyer
3 Tribes – Desmond Morris & Peter Marsh
4 गोदना चित्रशैली – के. के. कश्यप (साइक्लोस्टाइल संस्करण)।

फोटोग्राफ्स

कवर चित्र – बस्तर की आदिवासीबाला (इन्टरनेट / गूगल)
अफ्रिकी जनजाति के गोदना–देवता / पितर देवता – फोटोग्राफर मित्रा अलेन वॉल्थुट, फ्रान्स
शशिबाला वरक्षाकन करती हुई – फोटो : अशु गुप्ता, यूज, नयी दिल्ली
* इस पुस्तक में उपयोग किये गए फोटोग्राफ्स Indian Folk Art, Primitive Peoples Today, Tribes तथा इन्टरनेट से साभार लिये गये है। अन्य फोटो स्वयं कश्यप द्वारा खींचे गये है।

लेखकद्वय की अन्य प्रकाशित रचनाएँ

1 गोदना, 2 मिथिला चित्र शिक्षा, भाग–1, 3 मिथिला चित्र प्रवेशिका,–भाग1 / 2, 4 मिथिला चित्र कोर, भाग–3,
5 मिथिला अरिपन, भाग–4,
6 गोदना चित्र शैली, भाग–5, 7 मैथिली गीतगोविन्द, 8 मेघदूत।

ISBN- 978-81-907267-3-3

Rs. 700/-